निवेदन।

प्राचीन ऐतिहासिक कथायें यदि बोलचालकी भाषामें होती हैं तो उनका विशेष लाभ लिया जाता है। क्योंकि इससे सरलतासे कथाका आदर्श समझमें आजाता है। अतः इस चारुदत्त चरित्रको हमने श्रीमान् पण्डित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थसे कवि भारामलजी कृत छन्दबद्ध ग्रन्थसे हिन्दी भाषामें तैयार करवाया है। तथा इसका अल्प समयमें अधिक व विनामूल्य प्रचार हो इसलिये इसे "जैन महिलादर्श" के १४ वें वर्षके ग्राहकोंको भेटमें देनेका प्रबन्ध हमने इस प्रकार किया है:—

हमारी भावज श्रीमती विमलाबाई, धर्मपत्नी स्वर्गवासी सेठ जीवनलाल किसनदासजी कापड़िया-सूरत तथा उनकी भगिनी श्री० गुलाबबाई सौ० धर्मपत्नी शाह मगनलाल कीकाभाई घीवाला सूरत इन दोनों भगिनियोंने अपनी स्वर्गीय माताजी श्रीमती फूलबाई, धर्मपत्नी स्व० छगनलाल नवलचंदजी सरुपरिया मु० डबोक (उदयपुर के स्मरणार्थ शास्त्र दानके लिये कुछ रकम निकाली है उसमेंसे यह ग्रंथ 'महिलादर्श' के उपहारमें दिया जाता है। आशा है कि हमारी पाठिका बहिनें इस धार्मिक चरित्रको पढ़कर अपना चारित्र निर्मल व सहनशीलता पूर्ण रखनेका पाठ अवश्य सीखेंगी।

जो "जैन महिलादर्श" के ग्राहक नहीं हैं उनके लिये इसकी अलग प्रतियाँ विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं, जिनके शीघ्र ही बिक जानेकी सम्भावना है।

सूरत—वीर स० २४६२
मार्गशीर्ष सुदी ९
ता० ३०-११-३५।

निवेदक;—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

प्रस्तावना

अनेक कथा-ग्रन्थोंमेंसे 'चारुदत्त चरित्र' लिखनेकी मेरी इच्छा इसलिये हुई कि इसमें भयंकर पतनसे आदर्श उत्थानकी चर्चा है, पतितोद्धारकताका वर्णन है और सामाजिक एवं धार्मिक उदारताका खासा चित्र है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे ज्ञात होगा कि कहाँ तो चारुदत्तका बारह वर्षतक वेश्या-गृहमें निवास और कहाँ उनका मुनि होकर सर्वार्थसिद्धिमें गमन। यह जैन धर्मकी उदारताका ज्वलंत प्रमाण है। इसी प्रकार वेश्या वसन्ततिलकाके साथ विवाह करके चारुदत्तने उसे अपने समान बना लिया और उसने श्राविकाके व्रत ग्रहण करके अपना आत्मकल्याण किया। यह जैन समाजकी उदारताका स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार इस चरित्रमें अनेक ज्ञातव्य किंतु वर्तमान युगके लिये आश्चर्यकारी बातें प्रतीत होंगी।

मूलमें श्री० सोमकीर्तिकृत चारुदत्त चरित्र संस्कृत भाषामें है। वह अभीतक कहीं प्रगट नहीं हुआ है। श्री० पं० नाथूरामजी प्रेमीसे ज्ञात हुआ है कि 'श्री० सोमकीर्ति संभवतः काष्ठासंघी थे। उनका बनाया हुआ प्रद्युम्न चरित्र भी है।" जिसका श्री० प्रेमीजीने अनुवाद किया है। उन्हीं श्री० सोमकीर्तिजी कृत संस्कृत चारुदत्त चरित्रके आधारपर सिंघई भारामल्ल कविने सं० १८१३ में चौपाई दोहामें चारुदत्त चरित्र लिखा था। यह कवि खरौवा (गोलालारे) दि० जैन जातिके थे। इनका निवासस्थान फरुखाबाद और फिर भिण्ड था। इनकी बनाई हुई शीलकथा, दर्शनकथा, दानकथा निशि भोजनकथा आदि कई कथायें जैन समाजमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। कवि भाराम-

लजी कृत कथायें समाजपर धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करनेवाली हैं। और उनकी रचना बहुत ही सरल है। किन्तु साहित्यिक दृष्टिसे उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। यदि इनकी रचनाओंको मात्र तुकबंदी ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

उन्हींके चारुदत्तचरित्रसे यह पुस्तक लिखी गई है। बीचबीचमें जहां अन्य कथाग्रंथोंसे इसमें विरोध प्रतीत हुआ वह टिप्पणीके रूपमें नीचे लिख दिया गया है। इसे लिखते समय हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोषसे विशेष सहायता लीगई है। जहां इन तीनोंमें विरोध मालूम हुआ, वहां मुझे हरिवंशपुराणका कथन विशेष प्रमाणीक प्रतीत हुआ है। कथाग्रंथोंमें ऐसे विरोध प्रायः कई जगह पाये जाते हैं। वहां बुद्धिसे विचार करके प्रमाणीक कर्ताका कथन प्रमाण मानना चाहिये। क्योंकि कथाकी सभी बातें साक्षात् सर्वज्ञ भगवान द्वारा कही हुई नहीं होती हैं। इसी बातको आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजीने इस प्रकार लिखा है:—

"प्रथमानुयोग विषै जे मूल कथा हैं ते तौ जैसी हैं तैसी ही निरूपित हैं। अर तिन विषैं प्रसंग पाय व्याख्यान होहै। सो कोई तो जैसाका तैसा होहै, कोई ग्रंथकर्ताका विचारके अनुसार होय, परन्तु प्रयोजन अन्यथा न होहै। बहुरि प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्ता अपना विचार अनुसार कहै। जैसै धर्मपरीक्षा विषै मूर्खनिकी कथा लिखी सो एही कथा मनोवेग कही थी ऐसा नियम नाहीं। परन्तु मूर्खपनाकौं ही पोषती कोई वार्ता कही ऐसा अभिप्राय पोषै है।"

—मोक्षमार्ग प्रकाशक।

इसीको लक्ष्यमें रखकर यदि विचार किया जाय तो तमाम विरोध–परिहार होजाता है। पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस चरित्रको पढ़ते समय नीचे दिये हुए नोट अवश्य पढ़ते जावें। इसके अतिरिक्त बीच बीचमें प्रसंगोचित श्लोक भी दे दिये गये हैं। जिनका सम्बन्ध प्राय: इस चरित्रसे है।

चारुदत्तकी कथा बहुत ही व्यापक है। दिगम्बर, श्वेताम्बर और हिंदू शास्त्रोंमें भी यह कथा कुछ परिवर्तनके साथ पाई जाती है। इतना ही नहीं, किंतु साहित्यिक दृष्टिसे भी यह चरित्र अनेक कवियोंने लिखा है। इस विषयमें महाकवि शूद्रकका 'मृच्छकटिक' नाटक संस्कृतमें उच्चकोटिका ग्रन्थ है। उसके कुछ श्लोक इस चरित्रमें कई जगह दिये गये हैं। इसी प्रकार महाकवि श्री 'भास' कृत चारुदत्तचरित्र भी उच्चकोटिका ग्रंथ है। इन दोनों संस्कृत चरित्रोंके पढ़नेसे अपूर्व आनन्द आता है। यह कथा इतनी सुन्दर है कि आज भी लोग इसे बड़े ही चावसे पढ़ते हैं। यहांतक कि 'वसन्तसेना' नामका सिनेमा (फिल्म) भी निकल चुका है। श्री० जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराणके सर्ग २१ में यह चरित्र बहुत ही अच्छे रूपमें लिखा गया है।

प्राय: सभी कथाग्रंथोंमें वेश्यापुत्रीको 'वसन्तसेना' के नामसे लिखा गया है। तथा चारुदत्त और वसन्तसेनाकी जोड़ी ही विख्यात है। किन्तु कवि श्री भारामल्लजीने न जाने क्यों वसन्तसेनाको 'वसन्ततिलका' के नामसे लिखा है? मैंने भी इस चरित्रमें वसन्ततिलका

ही नाम रहने दिया है। इस चरित्रके पृष्ठ २७ के नीचे जो नोट दिया है वह भूलसे लिखा गया है। पाठकगण उसे सुधार लें।

इस चरित्रको पढ़नेसे ज्ञात होगा कि भोलेभाले धर्मात्मा चारुदत्तको बलात् वेश्याके साथ फंसाया गया था। और फिर वह इतना आसक्त हुआ कि अपना सर्वस्व गवा बैठा। फिर भी जब वह प्रतिबुद्ध हुआ तब उसने थोड़े ही समयमें अपने पापोंको धोडाला और वसंतसेनाने भी अवसर पाकर प्रायश्चित्तसे आत्मशुद्धि करली। महाकवि शूद्रकने तो अपने मृच्छकटिकमें इन दोनोंके विषयमें यहांतक लिखा है कि इस नगरीमें तिलक स्वरूप दो ही पूज्य हैं। एक तो आर्या वसंतसेना और दूसरा धर्मनिधि चारुदत्त। यथा—

दो ज्जेव पूअणीआ इह णअरीए तिलअभूदा अ।
अज्जा वसंतसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ॥

इसी प्रकार जैन शास्त्रोंमें भी इनका कम मान नहीं है। हमें इस चरित्रसे यह सीखना चाहिये कि कुसंगति नाशका कारण है जब कि धर्मयुक्त पवित्र जीवन जगतपूज्य होता है। साथ ही चारुदत्तका उद्योगी जीवन, व्यापारिक साहस और आपत्तियोंमें सहनशीलता भी हमें बहुत कुछ सिखा सकती है। प्रत्येक कथामें पतन और उत्थान दोनों बताये जाते हैं। उनमेंसे हमें उन्नतिकारक एवं कल्याणकर कार्योंका अनुकरण करना चाहिये। निवेदकः—

चन्दावाड़ी—सूरत
ता० ३०-११-३९। } परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ।

विषयसूची।

सेठ चारुदत्त मुनि अवस्थामें और वसंततिलकाका आश्चर्य।

मंगलाचरण ।

सर्वेषां वेधसामाद्यमादिमं परमेष्ठिनम् ।
देवाधिदेवं सर्वज्ञं श्रीवीरं प्रणिदध्महे ॥

मैं उन महावीर स्वामीके चरणोंमें नमस्कार करता हूं जो सभी दुख समूहको हरनेवाले हैं, तथा जो जगतके तरणतारण हैं और महा सुखके कारण हैं। उन्हीं भगवान महावीर स्वामीने जगतमें धर्मका प्रकाश किया और संसारके भ्रमको दूर किया जिससे अपूर्व सुखकी प्राप्ति हुई। उन्हींके निमित्तसे अनेक जीव धर्मकेमर्मको पहिचान कर और कर्मको नाश करके मोक्ष गये हैं। इस प्रकार श्री महावीर स्वामीको नमस्कार करके चौवीस तीर्थंकरोंको भी नमस्कार करता हूं। और चारुदत्त चरित्रका प्रारंभ करता हूं।

मध्य लोकके असंख्यात दीप समुद्रोंके बीचमें एक लाख योजन लम्बा चौड़ा जम्बूद्वीप है। उसको चारों ओरसे वेढ़े हुये लवण समुद्र है। जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह,

रम्यक, हैरण्यवत, ऐरावत, नामके सात क्षेत्र हैं। उनमेंसे दक्षिणकी ओर भरतक्षेत्र सुशोभित होता है। इस भरतक्षेत्रमें भी छह खण्ड हैं और उनमेंसे आर्यखंड प्रधान एवं महिमामय है। इसी आर्यखण्डमें जब चौथा काल होता है तब चौसठ शलाका पुरुष होते हैं। इस आर्यखण्डमें अनेक मनोहर देश हैं। उन्हींमेंसे अंग देशमें चम्पापुरी नगरी है। इसकी शोभा स्वर्गपुरीके समान है।

कथाका आरंभ।

जिस समयकी यह कथा है उस समय चम्पानगरीकी शोभा एवं महिमा अवर्णनीय थी। नगरीकी शोभा गढ़, खाई, कोट और विशाल दरवाजोंसे और भी बढ गई थी। वहांके वन उपवन तालाव आदि देखकर मन हर्षोन्मत्त होजाता था। वहांके सभी लोग जैन धर्मके धारण करनेवाले थे और प्रति दिन देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दानादि करते थे। सभी लोग गुणियोंसे प्रेम करते थे। सारा नगर धन धान्यादिसे पूर्ण था और वहां कोई दीन दुखी नहीं था। घर घरमें आनन्द मंगल होता था और सभी भोग विलास आदिसे सुखी थे। प्रत्येक घरमें शास्त्रोंका पठन पाठन होता था. कोई सामुद्रिक शास्त्रके वेत्ता थे तो कोई अपूर्व वैय्याकरण; कोई विविध विद्याओंके ज्ञाता थे तो कोई संगीतकलाके जानकार।

कहीं गायन मंडलियां बैठती थीं तो कहीं तमाशे और कीर्तन होते थे। इसप्रकार सर्वत्र आनन्द व्याप्त रहा था।

वहांके बाजारोंकी शोभा अपूर्व एवं अकथनीय थी। कोई हीरा मोती और मणियोंकी दुकानें थीं तो कोई रत्न-जड़ित आभूषणोंकी। कोई मेवा मिष्टान्नकी दुकानें थीं तो कोई आनन्दकारी विविध वस्तुओंकी।

वहांके गगनचुम्बी विशाल भवन तोरण आदिसे बहुत ही सुशोभित होते थे। वे भवन सातखण्डवाले एवं कलामय थे। उनकी शोभा देखकर यही मालूम होता था कि यह स्वर्गपुरीका टुकड़ा ही है। उन महलोंके प्रवेशद्वारोंकी चित्रकला देखते ही बनती थी। वहां सदा आनन्द उत्सव होते रहते थे।

कहीं कहीं विशाल जिनभंवन शोभित होरहे थे। उनपर स्वर्णकलश शोभा देते थे। और शुभ्र ध्वजायें आकाशमें उड़ रहीं थीं। उन मंदिरोंके भीतर रत्नमयी जिन प्रतिमायें विराजमान थीं। दर्शन करनेवालोंको ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि किसी इन्द्रका विमान ही हो। वहां सभी लोग जैन धर्ममें सदा रत रहते थे और प्रतिदिन दान पूजादिमें अपने द्रव्यका सदुपयोग करते थे।

चारों ओर सुन्दर तालाव थे और उनमें मनोहर कमल खिल रहे थे। वर्षाऋतुमें अच्छी वर्षा होती थी और सर्वत्र फल फूल लगते थे। तात्पर्य यह है कि वहांके निवासियोंको

भोगभूमि जैसा सुख था। उस चम्पापुरीके राजा विमलवाहन थे।* वह नीतिनिपुण एवं प्रजाके लिये सुखकारी थे। उनका कोई शत्रु नहीं था। उनकी विभूतिका वर्णन नहीं होसकता। उस राज्यमें सभी आनन्द विनोदसे रहते थे।

राजा विमलवाहनकी रानी विमलमती समस्त गुणोंकी खान थी। वह चन्द्रवदना रूपकला युक्त थी। और उस मृगनयनीका सुन्दर शरीर स्वर्णके समान देदीप्यमान था। राजा विमलवाहनकी वह रानी विमलमती ऐसी मालूम होती थी जैसे श्री रामचन्द्रजीकी पत्नी सीता। उसके समान रूपवती अन्य स्त्री नहीं थी। रूपके साथ उसमें शीलादि गुण भी थे, जिससे वह महाराजा विमलवाहनको सदा अनुरंजित करती रहती थी। उसके हरिसिंह, गोमुख, वराहक, परतप और मरुभूत नामके पांच पुत्र थे। यह पांचों पुत्र माता-पिताको सदा आनन्दित करते थे। पांचों पुत्रोंने शस्त्रविद्या और शास्त्र विद्या तथा क्षत्रियोचित सभी गुण प्राप्त कर लिये थे। इसप्रकार राजा सब प्रकारके सुखोंमें मग्न होकर काल यापन करता था।

उसी चंपानगरीमें एक राजमान्य वणिक भानुदत्त निवास करता था। वह हीरा, माणिक, मोती आदिका व्यापार करता था। राजसभा और राजभवनमें उसका अच्छा मान था।

---

* आराधना कथाकोशमें राजाका नाम 'शूरसेन' लिखा है। यथा-"चम्पाख्ये नगरे राजा शूरसेनो महानभूत्॥" कथा ३९॥

उसकी पत्नीका नाम देवल था।* वह सदा पतिकी आज्ञामें चलती थी और भानुदत्तको बहुत प्यारी थी। उसका सुन्दर रूप देखकर तो ऐसा मालूम होता था कि जैसे ब्रह्माने रति-रम्भाका नमूना ही बनाया हो! वह चन्द्रमुखी देवल अपने पतिके साथ दिन दूना प्रेम बढ़ाती रहती थी।

उसके कपोलमण्डलकी शोभा चन्द्र और सूर्यकी किरणोंके समान थी, नाक तोतेके समान सुन्दर थी, वचन कोयलके समान मधुर थे, बाल भोरोंके समान काले थे, मुख कमल जैसा सुन्दर था, आंखें मृगके समान मनोहर थी, उठे हुये स्तनद्वय स्वर्णकलश जैसे मालूम होते थे, गहरी नाभि और पतली कमर बहुत सुन्दर मालूम होती थी। शरीरकी कांति स्वर्ण समान मनोहर थी। तात्पर्य यह हैं कि वह ऐसी सुन्दर मालूम होती थी जैसे उसने रतिकी सुन्दरता छीनकर अपनेमें धारण करली हो। सुन्दरताके साथ ही देवल स्त्रियोचित सर्व गुण सम्पन्न थी। वह शीलवती एवं पतिभक्ता थी, साथ ही उसपर पतिका भी अपूर्व प्रेम था। उन दोनोंका स्नेह एवं अनुरूपता देखकर लोग आश्चर्य पूर्वक कहा करते थे कि दैवने यह कैसा अच्छा संयोग मिलाया है।

---

* हरिवंशपुराणमें भानुदत्तकी पत्नीका नाम 'सुभद्रा' लिखा है। यथा:-"भानुदत्त इति ख्यातः सुभद्रा तस्य भामिनी।" सर्ग २१-९॥ आराधना कथाकोशमें भी 'सुभद्रा' लिखा है। यथा:-" भानुनामाभवच्छ्रेष्ठी सुभद्रा श्रेष्ठिनी प्रिया॥" कथा ३९-२॥ श्वेताम्बर जैन कथा रत्नकोशमें भी 'सुभद्रा' नाम लिखा है।

पुत्रकी इच्छा ।

किन्तु फूलमें कांटा भी होता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सांसारिक सुख युक्त यह दंपति पुत्रके न होनेसे दुःखी थे । सेठानी देवलको संतानकी तीव्र इच्छा थी, इसलिये वह पुत्र प्राप्तिके लिये यक्ष यक्षिणी तथा अन्य कुदेवोंकी पूजा किया करती थी । इस प्रकार कुदेवोंकी पूजासे भी जब सफलता नहीं हुई तब वह और भी दुःखी होगई । सच तो यह है कि कुदेवोंकी पूजा स्तुतिसे भी क्या कहीं कार्यकी सिद्धि होती है ?

एक दिन सुमति नामके मुनिराज उसके मकानपर पधारे और उसे यक्ष यक्षिणीकी पूजा करते देखा ।* तब मुनिमहाराजने देवलको सम्बोधित करके कहा कि हे पुत्री ! तू कुदेवोंको क्यों पूजती है ? तब दोनों हाथ जोड़ मस्तक नमाकर देवल बोली कि भगवन् ! क्या करूं ? पुत्रके न होनेसे मैं बहुत दुखी हूं । पुत्रकी लालसासे मैं कुदेवोंकी पूजा

---

* आराधना कथाकोष और हरिवंश पुराणमें लिखा है कि सेठ और सेठानीने जिनमन्दिरमें मुनिराजके दर्शन करके वहींपर पूछा था कि हमारे पुत्रोत्पत्ति होगी या नहीं ? यथाः—एकदा श्री जिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे । नत्वा चारणयोगीन्द्रं सा सुभद्रा जगाद च ॥ कथा ३९-४ ॥ अर्हदायतने पूजां कुर्वाणावन्यदा च तौ । चारणश्रमणं दृष्ट्वा पुत्रोत्पत्तिमपृच्छतां ॥ हरि० २१-९ ॥ इसमें चारणऋद्धिधारी मुनिसे पूजा करते समय मिलना बताया है ।

करती हूं। पुत्र प्राप्तिके लिये मैं सब कुछ करनेको तैयार हूं। कहिये स्वामी! मेरे कब और कैसे पुत्र होगा या मैं योंही अपुत्रवती रहकर अपना जीवन पूरा कर दूंगी?

तब मुनिराज बोले कि पुत्री! तू शोकका परित्याग कर, चिन्ताओंको छोड़ दे और धैर्य धारण कर विवेकसे काम ले। क्या कभी कुदेवोंकी पूजासे पुत्रकी प्राप्ति होती है? कोई भी देव ऐसा नहीं है जिसकी पूजा मानता करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती हो। यह तो कर्मोदयके आधीन है। यह जानकर तुझे प्रसन्नता होगी कि अब कुछ समय बाद तेरे एक पुत्र रत्न होगा। तू कुदेवोंकी पूजा मानता छोड़ दे। जो स्त्री पुरुष इस प्रकार अभीष्टसिद्धिकी अभिलाषासे कुदेवोंकी पूजा करते हैं वे अन्तमें दुख पाते हैं।

बेटी! तुझे यह खबर नहीं है कि मिथ्यादेवोंकी पूजासे सम्यक्त्वका नाश होता है, धर्मकर्म सब मिट जाता है और अभीष्टकी सिद्धि भी नहीं होती। तू विश्वास रख कि अपने पुण्य पापके सिवाय और कोई भी देव किसीका कुछ सुधार या बिगाड़ नहीं सकता। जो लोग सम्यक्त्वहीन होकर मिथ्यात्वका सेवन करते हैं वे स्वप्नमें भी सुख प्राप्त नहीं करते और अंतमें नरककी यातनायें सहते हैं। जो अविवेकी मनुष्य सच्चे वीतरागी देवको छोड़कर कुदेवोंके सामने मस्तक रगड़ा करते हैं वे दुर्गतिमें जाते हैं। इसलिये तू मन वचन कायसे श्री जिनेन्द्र भगवानकी सेवा कर और जैनधर्म पर पक्का श्रद्धान

कर, जो भवभवमें सुखदाता है। तेरे पुण्यका उदय हुआ है. अब तुझे पुत्रकी प्राप्ति अवश्य होगी।

मुनिराजके यह वचन सुनकर देवल बहुत प्रसन्न हुई। उसे मुनिराजके वचनोंपर पूर्ण विश्वास होगया और जैनधर्म पर अटल श्रद्धा जम गई। मुनिराजको उसने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और मुनि महाराज वनकी ओर विहार कर गये।

देवलने मुनिराजके वचनोंकी विश्वासपूर्वक गांठ बांधली और यह दृढ निश्चय कर लिया कि पूर्वका सूर्य पश्चिममें भले ही उगे परन्तु मुनिराजके वचन असत्य नहीं होसकते। इसप्रकार विश्वास जमाकर वह नित्यप्रति जिन पूजन करने लगी. व्रत उपवास करने लगी और दानादि देने लगी।

चारुदत्तका जन्म।

इस प्रकार देवलके दिन आनन्दसे व्यतीत होने लगे और कुछ समय बाद गर्भ धारण हुआ। गर्भ स्थिति जानकर देवलके आनन्दका पार नहीं रहा। धीरे धीरे नव मास पूर्ण होनेपर सम्पूर्ण लक्षण-युक्त पुत्रकी प्राप्ति हुई।

सेठ और सेठानीके हर्षका पार नहीं था। याचकोंको दान दिया गया, मंगलाचार होने लगे, चारों तरफसे बधाइयां आने लगीं, और सभी प्रकारके आनन्द उत्सव होने

लगे। धीरे धीरे बालक जब बारह दिनका हुआ तब श्रुतके ज्ञाता ज्योतिषी विद्वान बुलाये गये। उन्होंने उस पुत्रका नाम "चारुदत्त" रखा। धीरे धीरे चारुदत्त दूजके चन्द्र समान बढ़ने लगा और देखते ही देखते आनन्द विनोदमें सात वर्ष पूर्ण होगये। तब माता पिताने जिन मंदिरमें महोत्सव किया, याचकोंको दान दिया और बालकको गुरुके पास पढ़नेको भेजा।* वहां वह विनयपूर्वक एकचित्त हो विद्याभ्यास करने लगा।

कुछ ही समयमें उसने अनेक शास्त्र पढ़ लिये और सब विद्याओंमें निपुण होगया। अलङ्कार, छन्द, व्याकरण, सामुद्रिक, तर्क, न्याय, नीति, ज्योतिष, गणित, संगीत, वैद्यक, और शस्त्र आदि विद्याओंमें निपुणता प्राप्त करली। तथा जैन सिद्धान्तमें पारंगत होगया। इस प्रकार सर्व विद्या सम्पन्न होकर चारुदत्त राजपुत्रोंके साथ क्रीड़ा किया करता था। राजपुत्रोंका और चारुदत्तका परस्पर खूब ही स्नेह हो गया था। वह सदा जैनधर्मपर श्रद्धा रखकर पूजा, जप, दान और तीर्थवन्दनादि किया करता था। इसप्रकार आनंद विनोदके साथ समय व्यतीत होने लगा। इसके बाद एक विचित्र घटना हुई, जो इस प्रकार है-

* हरिवंशपुराणमें लिखा है कि चारुदत्तको बाल्यकालमें ही पंचाणुव्रत भी धारण कराये गये थे। यथा:-"कृताणुव्रतदीक्षश्च ग्राहितः सकलाः कलाः॥" सर्ग २१-१२॥

चारुदत्तका वन विहार ।

चम्पापुरी नगरीके बाहर बहुत ऊँचा एवं शोभा युक्त एक पर्वत है।* उसका नाम मंदारगिरि है। उसपर जिन मंदिर हैं। उसी पर्वतसे श्री जमधर मुनिराज आठ कर्मोंको नाशकर मोक्ष गये हैं। इस लिये वह पवित्र भूमि पूजनीय है। वहां पर लोग यात्राके निमित्तसे जाते थे। वहां पर प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष माहके शुक्ल पक्षमें बड़ा भारी मेला लगता था। एकवार मेलाका समय आया तब नगरमें आनन्द छा गया और सब लोग पूजादिका द्रव्य लेकर अपनी अपनी सवारीपर असवार हो पर्वतकी ओर चले। इस यात्रामें राजासे लेकर रंक तक सभी लोग गये। चारुदत्त भी उस मेलामें गया था और वहांकी यात्रा करके आनन्द प्राप्त किया।

चारुदत्त यात्रा करके अपने मित्रके साथ नीचे उतरा और दोनों नदीके किनारे घूमनेके लिये निकल गये। थोड़ी दूर जानेपर एक बाग दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। बागके सभी वृक्ष फल फूलोंसे सुशोभित होरहे थे। उनकी शीतल छाया सुखकारी थी। कहीं नालि-यरके वृक्ष थे तो कहीं नारंगी लटक रही थीं, कहीं अमृतफल

---

* हरिवंशपुराणमें यात्राका जिकर नहीं है। किन्तु इतना मात्र लिखा है कि चारुदत्त रत्नमालिनी नदीके तटपर घूमने गया और वहां वनमें एक विद्याधरको वृक्षपर लटका देखा।

थे तो कहीं दाखें, बादामें, बेर, निम्बू और बिजौरा दिखाई देते थे। कहीं सुपारी, खजूर आदि लगे थे तो कहीं कदम, अन्नास, आड़ू, आम, कटहर, बड़हर, अचार, कैंथ, सदाफल, अतूत और अनार लग रहे थे। कहीं चंपा, केतकी रायच-मेली, गुलाब और गुलहरके फूल लगे थे तो कहीं कनैर फूल रही थी। इसी तरह और भी अनेक प्रकारके फलफूल उस बागमें लगे थे जिनकी गणना नहीं की जासकती।

उसीके निकट एक सुन्दर सरोवर था, जिसकी शोभाका वर्णन करना कठिन है। वह तालाव जलसे परिपूर्ण था। वहां कोयल मधुर शब्दोंमें कुहू कुहू करती थीं। चकई, चकवा और चकोर पक्षी भी बीच बीचमें मधुर बोली बोलते थे। इस प्रकार वह बाग बहुत ही सुन्दर एवं मनमोहक होरहा था। वहांपर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्त क्रीड़ा कर रहा था कि उसकी दृष्टि एक वृक्षपर पड़ी। उस वृक्षकी एक शाखामें एक मनुष्य कीलित था। उसके शरीरमें कीले ठुकनेसे वह मूर्छित होगया था। उसे अपने तन मनकी कुछ खबर नहीं थी। चारुदत्त यह दशा देखकर द्रवित होगया और शीघ्र ही वह उस वृक्षकी शाखापर चढ़ गया। और एक विमान देखकर चारुदत्तने अनुमान किया कि यह कोई विद्याधर होना चाहिये, इसे मार डालनेके लिये ही किसीने इसे इस प्रकार कीलित किया है। अच्छा हुआ जो इसके प्राण अभीतक अटके हुये हैं। इस प्रकार विचार कर चारुदत्तने उसे छुडानेका उपाय सोचा।

विमानमें देखनेसे उसे तीन गुटिकायें (औषधियां) मिलीं। उन गुटिकाओंके नाम कीलोत्पाटनी, संजीवनी, और व्रण सरोहनी था।

उन गुटिकाओंको चारुदत्तने हाथमें लिया और जिनेंद्र भगवानका स्मरण करके विद्याधरके शरीरपर कीलोत्पाटनी गुटिका लगाई। गुटिकाके स्पर्श होते ही विद्याधर छूट गया। इसके बाद चारुदत्तने उसे संजीवनी गुटिका लगाई, जिससे विद्याधरकी मूर्छा दूर होकर चैतन्य आगया। उसके बाद व्रणसरोहनी गुटिका लगाते ही शरीरके सब घाव मिट गये।* तब विद्याधर सचेत होकर उठा और चारुदत्तको देखकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।

विद्याधरकी कथा।

चारुदत्तने विद्याधरसे पूछा कि आप कौन हैं? आपके माता पिताका क्या नाम है? आपका निवासस्थान कहां है? आप यहां किसलिये आये थे और आपको इस कष्टमें किसने डाला है? तब

---

* हरिवंशपुराणमें गुटिकाओंके नाम और उनके गुणोंमें कुछ अंतर है। वहां इस प्रकारका वर्णन किया गया है कि—वहांपर चालन, उत्कीलन और व्रण संरोहणी नामकी तीन दिव्य औषधियां ढालके नीचे दबी हुई रखी थी। इशारा कर विद्याधरने उन्हें बताया। तब चालन औषधिके प्रभावसे चारुदत्तने विद्याधरको चलाया, उत्कीलनसे छुटाया और व्रणसंरोहणसे घाव अच्छे किये।

विद्याधर बोला कि-"विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें एक शिवमन्दिर नामका नगर है। वह इतना सुन्दर है कि स्वर्ग-पुरी जैसा मालूम होता है। उसका राजा महेन्द्रदत्त* है। उन्हींका मैं पुत्र हूं। मेरा नाम अमितवेग है मैं अपने स्थान-पर आनन्दपूर्वक निवास करता था। मेरा एक मित्र धूमशिखा विद्याधर है। वह भी विजयार्द्धपर ही रहता है। हम दोनोंका परस्पर अच्छा प्रेम था। प्रतिदिन हम आनन्द विनोद किया करते थे। एक दिन हम दोनोंने क्रीड़ा करनेके लिये बाहर जानेका विचार किया और ध्वजापताकासें युक्त सुंदर विमान सजाया। उसमें हम दोनोंने बैठकर बड़े ही आनन्द विनोदके साथ आकाशमें प्रयाण किया। विमान आकाशमें उड़ रहा था और हम वहांसे नगरकी सुन्दरता देख रहे थे।

आखिरकार, चलते चलते हमारा विमान हैमगिरि पर्वत पर पहुंचा। वहां ऐसे मनोहर स्थान हैं कि जिनकी शोभाका कथन नहीं होसकता। हम दोनों मित्रोंने वहांपर खूब आनन्द विनोद किया। वहांपर हमें एक क्षत्रिय जातीय हरीय× नामक मनुष्य मिला। उसकी एक सुन्दर कन्या थी जोकि देवकन्यासे भी अधिक रूपवती थी। उसका नाम सुरकुमारिका था। हम समझते हैं कि महिला मण्डलमें उसके समान सुन्दर कोई अन्य

---

* हरिवंशपुराणमें-राजाका नाम महेन्द्रविक्रम, पुत्रका नाम अमितगति, और मित्रोंका नाम धूमसिंह तथा गौरमुंड लिखा है।

× हरिवंशपुराणमें हरीयकी जगह 'हिरण्यरोम' नामका तपस्वी और उसकी कन्याका नाम 'सुकुमारिका' लिखा है।

स्त्री नहीं होसकती। उसका शरीर कनकवर्ण, मनोहर था। चन्द्रमाके समान मुख और मृगके समान सुन्दर आंखें थीं। हंसके समान चाल तथा कोयलके समान मधुर वाणी थी। केहरिके समान कटि थी और तोते जैसी सुन्दर नाक थी। तात्पर्य यह है कि वह सर्वांग सुन्दर थी। उसे देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ और मैं उसकी सुन्दर मूर्तिपर मोहित होगया। कामदेवके बाणोंसे मेरा शरीर आकुल व्याकुल हो उठा और यही विचार हुआ कि इस सुकुमारिकाके साथ विवाह करलूं। तब मैंने उसके पितासे विनयपूर्वक उस कुमारिकाकी याचना की। उसका भी मेरे ऊपर अच्छा स्नेह था, इसलिये उसने मुझे तिलक कर दिया और बड़े ही ठाट-बाटसे अपनी कन्याके साथ विवाह कर दिया।* मैं उसे लिवाकर सानन्द अपने घर आगया। वहां पहुंचकर हम नित नये आनन्द विनोद करने लगे और बड़े ही प्रेमपूर्वक भोगोपभोग करते हुये काल यापन करने लगे।

हम दोनोंको इसप्रकार आनन्द विनोद करते देखकर हमारा मित्र धूमशिखा विद्याधर जला करता था। वह हमारी पत्नीके रूपपर मुग्ध था, इसलिये उसे प्राप्त करनेके लिये उस दुष्टको दुर्बुद्धि सूझी।

---

* हरिवंशपुराणमें यों लिखा है कि मैं उस कुमारिकापर मुग्ध होकर अपने घर लौट आया, फिर भी वह मेरे मनमें वसी रही। जब मेरे पिताजीको यह बात मालूम हुई तब उनने तापसीसे मेरे लिये कन्याको मांगा। उसने स्वीकार करके मेरे साथ विवाह कर दिया।

उसने एक कपटजाल रचा और सुरकुमारिकाको हरनेका संकल्प किया। मैं उसके कपटजालको नहीं समझ सका कि उसके मनमें क्या दुष्टता भरी हुई है। होनहार बलवान होती है। तदनुसार दैवने कुछ ऐसी ही रचना रची। एक दिन धूमशिखा मेरे मकानपर आया। उसे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। बात ही बातमें वनक्रीड़ा करनेको बाहर जानेका निश्चय किया। तब मैंने एक सुन्दर विमान सजाया और अपनी पत्नीको तथा मित्रको साथ लेकर आकाशमें उड गया। उडते उडते हम इस बागमें आये और अनेक प्रकारकी क्रीड़ा की। मुझे प्रमाद अवस्थामें पाकर उस दुष्ट धूमशिखाने मुझे यहांपर इस प्रकार कीलित कर दिया।*

उस पापीको न तो कुछ दया आई और न यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसा करनेसे इसके प्राण बचेंगे या नहीं। यह बात भी दूर रही, मगर वह दुष्ट मेरी यह दशा करके उसी समय मेरी स्त्रीको लेकर भाग गया। उस समय मेरी तो ऐसी हालत थी इसलिये मैं कुछ भी नहीं कर सका। और मैंने घोर दुख सहन किये। मगर क्या किया जाय? यहां मेरा कोई शरण नहीं था। किन्तु अन्तमें मेरे सद्भाग्यसे आप यहां आनिकले और आपके प्रसादसे मेरे प्राण बच गये। सचमुच

---

* हरिवंशपुराणमें तीनोंका विमानमें जानेका कोई जिक्र नहीं है। किन्तु उसमें यह लिखा है कि मैं इस नदीके पुलिनमें रतिक्रीड़ा कर रहा था कि अचानक ही दुष्ट धूमसिंह भी आपहुंचा और मुझे कीलितकर मेरी प्यारी पत्नी सुकुमारिकाको लेकर चलता बना।

ही मैंने आपकी कृपासे पुनर्जन्म प्राप्त किया है और अपूर्व सुख प्राप्त किया है। वास्तवमें पूर्वकृत कर्मकी रेखाको कोई नहीं मिटा सकता। हे धीर पुरुष ! तुम दयालु हो और परोपकारके लिये सदा तत्पर रहनेवाले हो। इतना कहकर वह विद्याधर हाथ जोड़कर नतमस्तक हो बोला कि हे नाथ! अब मुझे घर जानेकी आज्ञा दीजिये। मैं जाकर उस दुष्टसे अपनी पत्नीको शीघ्रही छुड़ाऊँगा और उसे दण्डित करके देशसे बाहर निकाल दूँगा।

यों कहकर उस अमितवेग विद्याधरने एकबार फिरसे चारुदत्तको नमस्कार किया और बड़ी ही उमंगसे विमानमें बैठकर अपने नगरकी ओर रवाना होगया। वहां पहुंचकर उसने धूमशिखाको कैद कर लिया और अपनी स्त्रीको छुड़ा लिया। इसके बाद वह विद्याधर उसी समय चारुदत्तके पास आया और हाथ जोड़कर बोला कि हे स्वामी! मेरी प्रार्थना सुनिये। मैं अपनी पत्नीको छुड़ाकर इस दुष्टको आपके पास लाया हूं। इस दुष्टने मुझे बहुत दुखी किया है। अब आप जो चाहें सो इसे दण्ड दीजिये। आपके प्रसादसे मेरे प्राण बचे हैं, इसलिये मैं तो आपका सेवक हूं, आपका आज्ञाकारी हूं और आप मेरे मालिक हैं, प्राणदाता हैं।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि–हे धीरवीर ! ऐसी बातें मत करो। हमारा तुम्हारा स्वामी सेवकका व्यवहार नहीं है किन्तु तुम मेरे भाई हो, यही मनमें निश्चय समझो।

यदि आप मानें तो हमारा तो यह विचार है कि इस दुष्टको अब छोड़ दिया जाय। इतना सुनते ही विद्याधर आनंदितः हुआ और उसे मुक्त कर दिया। इसके बाद अमितवेग विद्याधर चारुदत्तकी आज्ञा पालन करके अपनी पत्नी सहित नगरको चला गया।

चारुदत्त अपने द्वारा यह शुभ कार्य हुआ देखकर बहुत आनन्दित हुये और फिर उस बागसे मित्र सहित अपने स्थानको चले गये। वहां जाकर अपने महलोंमें बड़े ही आनंदपूर्वक कालयापन करने लगे।

चारुदत्तका विवाह।
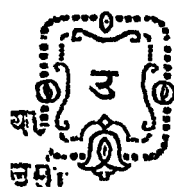
उसी नगरमें एक सिद्धार्थ* नामका सेठ था। वह विपुल सम्पत्तिशाली था। वह देवल सेठानीका भाई और चारुदत्तका मामा था। उसकी स्त्रीका नाम सुमित्रा था। वह जैसी रूपवती थी वैसी गुण एवं गुणोंसे युक्त भी थी। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम 'मित्रवती' था। वह सामुद्रिक शास्त्रके अनुकूल सभी शुभ अंगोंसे युक्त थी। रूप, लावण्य और गुणयुक्त मित्रवती मालूम होती थी जैसे स्वर्गकी किन्नरी ही हो। जब यौवनवती हुई, तब उसके माता पिताको विवाहकी चिंता हुई। माता पिताका कर्तव्य है कि वह पुत्रीके

---

* हरिवंशपुराणमें 'सर्वार्थ' नाम है।

अनुकूल वरकी शोध करें, अच्छा कुल और अच्छा घर देखें और ऐसे ही अनुरूप वरके साथ विवाह करें। तदनुसार सिद्धार्थ सेठने विचार किया कि अपनी पुत्री मित्रवती चारुदत्त (अपने भानजे) को देनी चाहिये।* उसका अच्छा कुल है. शुभ लक्षण हैं और अपनी व इनका पुत्र (भानजा) है। इस प्रकार विचार करके चारुदत्तको टीका कर दिया और दोनों ओरसे आनन्द मनाया गया। उसी समय ज्योतिर्विदोंने लग्नकी घड़ी भी शोधी और विवाहका शुभ दिन निश्चित किया गया।

उसी समयसे खूब आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। कहीं कामिनियां मंगल गान गाती थीं तो कहीं स्त्रियां चौक पूरती थीं। कहींपर विवाह सम्बन्धी व्यवहार-नेंग दस्तूर होरहे थे तो कहीं विविध बाजे बज रहे थे। उस समय भेरी, झांझें, झालर, कंसाल, ढोल, मृदंग, और वीन बाजोंसे सारा नगर शब्दायमान होरहा था। एक ओर याचकोंको दान दिया जाता था तो दूसरी ओर सज्जनोंका सन्मान किया जाता था। इस प्रकार धामधूमके साथ चारुदत्तने करकङ्कण और मौर-मुकुट आदि धारण करके बरात सहित विवाहके लिये प्रयाण किया। सिद्धार्थ सेठके दरवाजेपर जब बरात पहुँची तब खूब आदर-सत्कार और अगवानी की गई।

---

* पहिले भानेजके साथ अपनी लड़कीका विवाह करनेका बहुतायतसे रिवाज था। यह प्रथा दक्षिण प्रान्तमें अभी भी है।

वहांपर बहुत ही सुन्दर मण्डप और वेदीकी रचना कीगई थी जो अत्यन्त मनोहर थी। उस समय कामिनियां रस भरे कमनीय गीत गारही थीं और सुन्दरियां वर-कन्याका श्रृंगार कर रही थीं। वहींपर विद्वान् पंडित विवाह विधिके मंत्रोच्चार कर रहे थे। इसप्रकार शास्त्रीय विधिसे विवाह आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार वरको कन्याका दान दिया गया। और स्वर्णाभरण तथा वस्त्रादिसे सन्मानित किया गया। इसके बाद विदा होकर चारुदत्त अपने मकानपर आये तब उनकी माता बहुत ही आनन्दित हुई और बधाई देकर खूब आनन्दोत्सव किया। सब कुटुम्बी और सम्बन्धीजन इस सुयोग्य सम्बन्धको देखकर प्रसन्न हुये।

चारुदत्तकी विरक्ति।

शास्त्रव्यसनिनो मेऽभून्नात्मस्त्रीविषयेऽपि धीः ।
शास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसनानां हि बाधकम् ॥

—हरिवंशपुराण ।

होनहार बलवान होती है। इतना उत्तम सम्बन्ध मिलनेपर भी चारुदत्तको अपनी नवपरिणीता पत्नीपर स्नेह उत्पन्न नहीं हुआ। उसने आते ही उसका त्याग कर दिया! न उसकी वह खबर लेता था और न उसके पास ही कभी जाता था। वह विचारी इस अकारण परित्यागसे दुखी रहती थी। उसके पास मात्र एक दो

सखियां ही रहती थीं, बाकी वह सूने एकान्त स्थानमें अपने दिन पूरे किया करती थी। वह न किसीसे कुछ कहती थी, न सुनती थी, किन्तु चुपचाप विलाप किया करती थी और अपने पूर्वोपार्जित कर्मको ही दोष दिया करती थी। अपने पतिके वियोगसे दुखी होकर उसने सब शृंगार और ताम्बूलादिका भी त्याग कर दिया था। विचारी लम्बी सांसें लेकर मस्तक धुना करती थी और कहती थी कि हे विधाता! तूने यह क्या किया? यों कहकर दिन रात आंखोंसे आंसू बहाया करती थी और दुख शोकमें अपना काल यापन किया करती थी।

उधर चारुदत्त बड़े ही आनन्द प्रमोदसे विद्याध्ययन कर रहे थे। उन्हें काव्य, पुराण, छन्द, व्याकरण और अलंकारादि शास्त्रोंके पढ़नेका काफी शौक था, इसलिये वे इसीमें मस्त रहते थे। वे न तो अपनी पत्नीकी खबर लेते थे और न उन्हें कामवासनाका ही विचार था।

एकबार दैवयोगसे चारुदत्तकी सास सुमित्रा अनायास ही चारुदत्तके मकानपर आई और अपनी पुत्रीके स्थानपर गई। पुत्रीने माताको देखकर स्नेह व्यक्त किया और आदरपूर्वक उच्च स्थान देकर कुशल समाचार पूछा। मगर मित्रवतीकी दीन हीन एवं दुखी अवस्था देखकर माता सुमित्रा अवाक् रह गई और कुछ भी न बोल सकी! किन्तु चिंता और विषादयुक्त होकर मित्रवतीकी ओर देखने लगी।

वह देखती है कि हमारी पुत्री अत्यन्त क्षीण शरीर होगई है। शरीरपर मैले कुचैले वस्त्र पहिने हैं। मुखचन्द्र मैला और दुखी दिखाई देता है। वह ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा काले बादलोंसे ढक गया हो। शरीरपर द्वादश प्रकारके आभूषण नहीं हैं। सोलह श्रृंगार और ताम्बूलादिका भी त्याग कर दिया है। यह सब देखकर अपनी पुत्रीसे सुमित्राने कहा कि बेटी! यह तुझे क्या होगया है? तूने ऐसा भेष क्यों बनाया है? क्या तेरे ऊपर पतिका प्रेम नहीं है? या कोई दूसरी चिन्ता लगी है? तेरा यह मैला शरीर और मैले वस्त्र देखकर मुझे भारी दुःख होरहा है। बेटी! सच सच बात कहदे, क्या कारण है? मुझसे कोई बात मत छुपा।

माताकी बातें सुनकर मित्रवतीने संकोचसे मुख नीचा कर लिया और जमीन कुरेदने लगी। वह कुछ कहना चाहती थी, मगर कह नहीं सकती थी। कहनेके लिये बात ओठोंतक आजाती थी मगर मुंह नहीं खुलता था। तब सुमित्राने कहा कि पुत्री! अपने सुख दुखकी तमाम बातें मुझसे कहकर मेरे हृदयको शान्त कर। तू जानती है कि मुझे तेरे सुखमें सुख और तेरे दुखमें दुख है। तू निःसंकोच होकर कह दे कि तुझे ऐसा क्या दुःख है कि जिससे तेरी ऐसी हालत होगई है।

इसप्रकार माताका अत्यन्त आग्रह देखकर मित्रवती आंखें नीची करके बोली कि जिस दिन तुमने मेरा विवाह किया और मैं जबसे यहां आई हूं तबसे मेरे पतिने न तो

मेरी सुध ली है और न मेरे साथ कोई बातचीत ही की है। इतना ही नहीं किन्तु वह मेरे पास तक नहीं आते हैं। वे मुझे कभी याद भी नहीं करते और मैं इस मकानमें अकेली पड़ी पड़ी रोया करती हूं। उन्हें तो मात्र दिन रात पढ़ना लिखना ही सूझता है, गृहस्थाश्रम या आनन्दविनोदका तो उन्हें कोई विचार ही नहीं आता। वे तो अपना विरक्त जीवन सा बिता रहे हैं। उन्हें यह खबर ही नहीं है कि पत्नीके प्रति पतिका क्या कर्तव्य है। बस, मुझे यही दुख सालता है, कारण कि स्त्रियोंको पति-वियोग जैसा दुख दूसरा नहीं है। यही कारण है कि मैं सब सुध बुध भूलकर इस प्रकार दुखी हो रही हूं।

यह सब हाल सुनकर माता सुमित्राने मित्रवतीसे कहा कि बेटी! तू इस प्रकार आकुल व्याकुल मत हो, विधिका विधान कोई नहीं मिटा सकता। जो होना होता है वह होकर ही रहता है। कुलवधुओंको तो कुलकी रीतिपर ही चलना चाहिये। जो नीच हैं वे नीच विचार करती हैं। इसलिये तू शांत चित्तसे जिनेन्द्र भगवानके चरणोंका स्मरण कर और उन्हींके नामकी माला जपा कर। इस प्रकार अनेक तरहसे पुत्रीको समझा बुझाकर और अपने मनमें अत्यन्त दुखी होकर सुमित्रा वहांसे उठी तथा मनमें खूब क्रोध करती हुई मित्रवतीकी सासके पास गई। सुमित्राको आई हुई देख-कर चारुदत्तकी माताने यथोचित आदर-सत्कार किया और बैठनेको उच्चासन दिया।

बैठते ही कुशल समाचार पूछनेकी बात तो दूर रही। सुमित्रा कहने लगी कि सेठानीजी ! तुम्हारा पुत्र पढ़ा लिखा तो है, मगर उसे व्यावहारिक ज्ञान तनिक भी नहीं है। उसे न तो गृहस्थाश्रमका ही ज्ञान है और न वह यह जानता है कि पतिका पत्नीके प्रति क्या कर्तव्य है। वह पढ़ा लिखा होकर भी अज्ञान है ! वह आजतक अपनी पत्नीके पास कभी नहीं गया है। तुम्हें तो यह पहलेसे ही ज्ञात था कि चारुदत्तकी रुचि पढ़ने लिखनेमें ही है और वह कुछ नहीं जानता, तो फिर उसका विवाह ही क्या झख मारनेको किया था ? इस प्रकार क्रोधावेशमें जो जीमें आया सो कहा।

देवलने यह सब कटुवचन चुपचाप सुन लिये और फिर बहुत नम्रतासे प्रार्थना की तथा अपनी लघुता बताकर विविध वचनोंसे उसे शांत किया। उसके बाद सुमित्राको आदर-पूर्वक उसके घर पहुंचा दिया।

तदनन्तर चारुदत्तकी माता बहुत दुखी हुई। उसे सुमित्राका एक एक वचन कांटेकी तरह सालने लगा। उसने विचार किया कि अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे चारुदत्त सांसारिक बातोंको भी समझने लगे। बहुत कुछ सोच विचारके बाद उसने चारुदत्तके काका रुद्रदत्तको अपने मकानपर बुलाया और उससे कहा कि आप कुछ चारुदत्तको समझाइये, उसे संसारकी ओर झुकाइये, भोगविलासका भान कराइये और ऐसा प्रयत्न करिये कि

जिससे वह अपने गृही कर्तव्यको समझने लगे। मुझे और कोई चिन्ता नहीं है। चाहे जितना धन खर्च होजावे। मगर इस कार्यकी सिद्धि होना चाहिये।*

---

*इसके वाद हरिवंशपुराणमें इसप्रकार कथन है—कदाचित् वेश्या वसंतसेनाका किसी नृत्यमंडपमें नृत्य हुआ। काका रुद्रदत्तके साथ मैं (चारुदत्त) भी वहां गया। मण्डपमें साहित्य आदि कलाओंमें पूर्ण निष्णात अनेक मनुष्य वैठे थे। मैं भी उनके मध्यमें जाकर बैठ गया। वसंतसेना उस समय सूची नाटक (सुइयोंके अग्रभाग पर नाचना) प्रारम्भ करना चाहती थी, उसके पहले ही उसने विना खिले हुये जाति पुष्पोंको बिखेर दिया। और वे तत्काल ही गायनके प्रभावसे खिल गये। यह देख मंडपमें बेठे हुये लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। मुझे इस बातका पूर्ण ज्ञान था कि पुष्पोंके खिलनेसे कौनसा राग होता है, इसलिये मैंने शीघ्र ही उसे मालाकार रागका इशारा कर दिया। वेश्याने अंगुष्ठका अभिनय किया, लोगोंने फिर उसकी प्रशंसा की और मैंने नखमंडलको साफ करनेवाले नापित रागका इशारा किया। जब वह गौ और मक्षिकाकी कुक्षिकाका अभिनय करने लगी तो और लोग तो पहिलेहीकी भांति वेश्याकी प्रशंसा करने लगे किन्तु मैंने गोपाल रागका इशारा कर दिया। वेश्या वसंतसेना हाव भाव कलाओंमें पूर्ण पण्डिता थी, इसलिये उसने जब मेरा यह चातुर्य देखा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और अंगुलीकी आवाज कर मेरी प्रशंसा करने लगी। तथा अनुरागवश समस्त लोगोंको छोड़ मेरे सामने आकर अति मनोहर नाच नाचने लगी। नृत्य समाप्तकर वेश्या वसंतसेना अपने घर चली गई परन्तु मेरे उस चातुर्यसे उसके ऊपर कामदेवने अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इसलिये वह घर जाते ही अपनी मांसे बोली कि मां! इस जन्ममें सिवाय चारुदत्तके मेरी

भावजके इस प्रकार वचन सुनकर रुद्रदत्तने अपने मनमें विचार किया कि इसी नगरमें वसन्तमाला* नामकी एक वेश्या है, उसकी पुत्री वसन्ततिलका बहुत ही रूपवती और गुणवती है। वह इतनी चतुर है कि अपने मंत्र तंत्र और चेष्टाओं आदिसे चारुदत्तको क्षणभरमें ही वशमें कर लेगी। इसलिये उसके पास जाकर सारा हाल सुनाना चाहिये और उसे खूब द्रव्य देकर इस कार्यके लिये तैयार करना चाहिये। कारण कि:—

यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता, धनहार्यो ह्यसौ जनः।

—मृच्छकटिकम्।

तात्पर्य यह है कि जिसके पास धन होता है उन्हींकी वेश्या पत्नी बन जाती है।

यों विचार करके रुद्रदत्त वेश्याके पास गया और उससे कहा कि मैं तेरे पास चारुदत्तको लाऊँगा, उसे तू किसी भी उपायसे अपने वशमें करनेका प्रयत्न करना। वह भोला लडका कामकलाको बिलकुल नहीं जानता है, इसलिये तू उसे सब सिखा देना। यों कहकर वह अपने घरपर चला गया।

दूसरेके साथ संभोग न करनेकी प्रतिज्ञा है। कलिंगसेनाने मेरे काका रुद्रदत्तको समझाकर मुझे अपने घर बुलवाया और वसन्तसेनाके साथ मेरा पाणिग्रहण करा दिया।

*हरिवंशपुराणमें 'कलिंगसेना' वेश्या और उसकी पुत्री 'वसन्तसेना' के नामसे कही गई है।

वेश्यागमन ।

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन,
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥

—मृच्छकटिकम् ।

एक दिन रुद्रदत्तने चारुदत्तको बुलाया और नगरमें घुमानेके लिये लेगया। घूमते घूमते वे दोनों वेश्याओंकी गलीमें पहुंचे । तब चारुदत्तने कहा कि इधर जाना या घूमना ठीक नहीं है। वेश्याओंके घर जाना या उधर घूमना तो कामीजनोंका काम है, मैं अब आगे नहीं जाना चाहता। यों कहकर चारुदत्त वापिस अपने मकानको लौट आया ।

इस कार्यमें अपनी सफलता न देखकर रुद्रदत्तने महावतोंको बुलाया और उन्हें कुछ द्रव्य देकर कहा कि हम चारुदत्तको लेकर वेश्याके दरवाजेपर जाते हैं, इतनेमें तुम दोनों ओरसे हाथियोंको लाकर भिड़ा देना और खुब चिल्ला चिल्लाकर कहना कि हाथी मतवाले हैं, खुनी हैं, दौड़ो दौड़ो बचो बचो इत्यादि। इसप्रकार समझाकर रुद्रदत्त चारुदत्तको साथमें लेकर फिर नगर घुमानेको लेचले । चलते चलते वे दोनों वेश्यागृहके पास जापहुंचे । इतनेमें दोनों ओरसे दो हाथी दौड़ते हुये आये। महावत चिल्ला रहे थे कि भागो

भागो, हाथी मस्त और खूनी हैं, यह हमारे हाथमें नहीं हैं, इनने कई आदमियोंको घायल कर डाला है। ओ आगे जाने-वालो ! दौड़ो दौड़ो अपने प्राण बचाओ !

चारुदत्तको उस समय भागनेका कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया । मात्र प्राण रक्षाके लिये सामने वेश्याका घर ही दिखाई देता था। उधर रुद्रदत्तने भी उसीमें घुसनेको कहा। और दोनों वेश्याके घरमें घुस गये ।*

मकानमें जाकर उन्हें कुछ शांति मिली और वे उसकी शोभा देखने लगे । वहां बड़े२ विशाल कमरे थे, चारों ओर मनोहर तोरण बंधे थे, रत्नजटित दरवाजे शोभायमान हो-रहे थे, उनकी ज्योतिसे सारा मकान जगमगा रहा था। वहां अनेक प्रकारके रंगविरंगे खंभे लगे हुये थे । आंगनकी शोभा तो देखते ही बनती थी । वहांकी चित्रकला अनायास मन मोहित कर लेती थीं। कहीं चीतेका चित्र था तो कहीं मयूर, कोयल दिखाई देती थी। कहींपर चौरासी आसनोंके चित्र बने थे तो कहीं रागरंग दर्शक चित्राम शोभा देरहे थे। कहीं कोमल बिछौना बिछे थे तो कहीं चन्दोवा और परदा टंगे हुये थे। तात्पर्य यह है कि उस मकानकी शोभा देखकर लोग योंही मंत्र-मुग्धसे होजाते थे। वह गणिकामंदिर नगरमें अद्वितीय ही था । ऐसा मकान नगर भरमें और किसीका नहीं था ।

---

* इस प्रकारका कोई कथन हरिवंशपुराणमें नहीं है । वहां तो नृत्यके समय प्रेम होना बताया है, जो विशेष संगत प्रतीत होता है।

वे दोनों शोभा देखते हुये आगे बढ़े और वेश्याके पास जापहुंचे । वेश्या वसंतमालाने उनका अच्छा आदर किया और थोडी बातचीतके उपरांत वह चौपड उठा लाई । तथा रुद्रदत्तके साथ खेलने लगी । उस खेलमें रुद्रदत्तकी कईवार बुरीतरह हार हुई, यह चारुदत्तसे नहीं देखा गया । काका रुद्रदत्तका बारबार हारते रहना चारुदत्तको बहुत खटकने लगा । थोड़ी देर बाद चारुदत्तने रुद्रदत्तसे कहा कि यदि आप मुझे खेलने दें तो निश्चयसे आपकी ही जीत हो । यह सुनकर वसंतमालाने कहा कि यदि आप खेलना ही चाहते हैं तो हमारी सुन्दरी पुत्री वसंततिलकाके साथ खेलो । मेरे साथ क्या खेलोगे ? मैंतो वृद्धा हूं और तुम हो सुन्दर गुण-निधान एवं यौवनवंत सुकुमार ! तुम्हारी और वसंततिल-काकी जोड़ी खुब जंचेगी ! जिसप्रकार तुम खेलनेमें चतुर हो उसी प्रकार हमारी कुमारिका वसंततिलका भी प्रवीण है ।

इतना कहकर वसंतमालाने वसंततिलकाको बुलाया । उसे देखते ही चारुदत्तके मनमें एक अपूर्व हिलोर उठी और वह उसे क्षणभर देखता ही रह गया । वह उसे देवांगनासे भी अधिक सुन्दरी प्रतीत होरही थी । वसंततिलकाके सुन्दर श्याम केश सुगंधित तैलसे मन मुग्ध कर रहे थे । उसके सुन्दर शरीरकी शोभा वर्णन करना बहुत कठिन है । उसकी आंखें फूले कमल जैसी सुन्दर थीं और खंजन पक्षी तथा मछ-लियोंको भी लज्जित करनेवाली थीं । उसकी भौंहें टेढ़े धनुषके समान मालूम पड़ती थीं और नाक तोते जैसी

सुंदर थीं। वह ऐसी मालूम होती थीं जैसे कामका गढ़ ही रचा गया हो।

उसका मुख, चन्द्रमा जैसा सुन्दर और चमकते हुये दात विजली जैसे मालूम होते थे। लाल ओष्ठ तो ऐसे सुन्दर लगाते थे जैसे वे कामकी वरावरी कर रहे हों और उसके उठे हुये कुच कामके निवास करनेके लिये मंदिर जैसे मालूम होते थे। उसकी असन्त पतली कमर और सुन्दर जंघायें काम क्रीडाका स्थल मालूम होती थीं। उसके कोमल और लाल पैर मनमोहक थे और उसकी मंदगति मराल जैसी मालूम होती थी। उसकी भुजायें कोमल थीं और शरीर कृष था। तथा मोतियोंसे भरी हुई मांग वहुत सुन्दर मालूम होती थी। इतना ही नहीं किंतु उसका शरीर कसुमी वस्त्र पहिननेसे असन्त दैदीप्यमान हो रहा था। उसने सोलह प्रकारके श्रँगार किये थे और बारह प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित थी। इस प्रकार जब वह सुसज्जित होकर हँसती हुई मीठे वचन बोलती थीं तब ऐसा मालूम होता था जैसे कोई कोयल ही बोल रही हो।

वह रात दिन आनन्द विलासमें रहा करती थी और अनेक प्रकारके राग रंगमें मस्त रहती थी। उस सुंदरीके साथ जब चारुदत्तकी आंखें मिलीं तब चारुदत्त विह्वल होगया।

वसन्ततिलकासे प्रेम ।

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः ।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ॥
—मृच्छकटिकम् ।

वसंततिलका विचारने लगी कि यह हमारे पुण्य हीका उदय समझना चाहिये कि जो हमारे घरपर कुंवर पधारे हैं। चारुदत्तने भी उसपर मुग्ध होकर कुछ द्रव्य न्यौछावर कर दिया। वसन्ततिलकाने भी अवसर देखकर चौपड़ खेलना प्रारम्भ की। एक दो बाजी हो पाई थी कि चारुदत्तको प्यास लगी और उसने बसंततिलकासे पानी मांगा। वेश्याने भी मोहनचूर्ण डालकर श्रेष्ठिपुत्र चारुदत्तको पानी पिला दिया। उसे पीते ही वह विह्वल होगया। इतना ही नहीं किन्तु वह कामबाणसे पीड़ित होकर मोहके द्वारा विकल होउठा। वेश्याने भी उसे अपने वशमें कर लिया और वह वेश्याके साथ रहने लगा।*

सच बात तो यह है कि जो होनहार होती है वह होकर ही रहती है और विधिका विधान कोई नहीं बदल सकता। चारुदत्त उस समयसे इस प्रकार वेश्यासक्त हो गया जैसे

---

* आराधना कथाकोशमें लिखा है कि चारुदत्त कुसंगतिके कारण मांसादिका भी सेवन करने लगा था। यथाः—ततोऽसौ चारुदत्तश्च कुसंगात्तप्रदोषतः। मांसादिकेऽपि संसक्तः कुसंगः पापकारणम् ॥
—कथा ३९ श्लोक १३ ।

पतंगे दीपकके पास जाकर अपना शरीर जलाया करते हैं। वह वेश्याके घर इस प्रकार लीन होकर रहने लगा कि उसे किसी प्रकारकी सुध बुध भी न रही। एक दिन चारुदत्तने वसंततिलकासे कहा कि मेरी संपत्ति असीम है, आभूषण इत्यादिककी तो कोई गिनती ही नहीं है। तुझे जितना जो कुछ मंगवाना हो सो मेरे यहांसे मंगवाले और खूब द्रव्य खरचो, खाओ और मौज करो। यह सुनकर वेश्या बहुत प्रसन्न हुई और वह चारुदत्तके साथ आनंद विनोद करने लगी। चारुदत्त वेश्याके वशमें इस प्रकार होगया जैसे जादूगरके वशमें विषधर सर्प होजाता है। इस प्रकार चारुदत्त वेश्याके साथ महलोंमें आनन्दपूर्वक काल यापन करने लगा।

इधर तो चारुदत्त वसंततिलकाके साथ मौजमें पड़ गया और उधर रुद्रदत्त उसे वैसी ही स्थितिमें छोड़कर अपने स्थानको चला गया। चारुदत्तके पिताने रुद्रदत्तको अकेला आया देखकर कहा कि भाई! तुम मेरे पुत्रको कहां छोड़ आये हो? तब रुद्रदत्तने कहा कि चारुदत्त वेश्याके यहां है। इसके अतिरिक्त आद्योपांत सब बातें कह सुनाईं। यह सुनकर चारुदत्तके पिताको क्रोध आगया और वे बोले कि अरे दुष्ट! तूने यह क्या किया? जानबूझकर अपने मस्तकपर यह पापका घड़ा किसलिये रख लिया? क्या तू नहीं जानता कि वेश्याकी संगतिसे नरकमें जाना पड़ता है और वहांपर गर्म पुतलियोंके साथ शरीर जलाया जाता है। क्या तुझे यह मालूम नहीं है कि वेश्यायें भी तबतक प्रेम करती हैं जबतक

उन्हें खूब धन दिया जाता है और उनके साथ अनेक प्रकारकी क्रीडायें की जाती हैं, किंतु जब धन नहीं रहता है तब कामदेव जैसा रूपधारी मनुष्य भी वेश्याके घर पानी भरता है। इस प्रकार कहकर भानुदत्त मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा और अपने भाग्यको दोष देने लगा।

उधर चारुदत्तके द्वारा भेजी हुई वेश्या-दासी भानुदत्तके यहां प्रतिदिन आने लगी और उन्हें समझाया करती थी कि मुझे चारुदत्तने भेजा है और खर्चके लिये द्रव्य मंगवाते हैं इसलिये अधिक द्रव्य दीजिये। भानुदत्त भी पुत्र प्रेमके वशीभूत होकर वेश्यादासीको खूब धन बांध देता था। इसप्रकार बहुत समय होगया तब सेठने विचार किया कि चारुदत्त बुरे व्यसनमें फँस गया है इसलिये कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे वह अपने घर वापिस आजाय। वह मोहसे इतना विह्वल होगया है कि उसे न तो कोई चिंता है और न अपने कुटुम्बीजनोंका ही ख्याल रहा है, वह तो अपने राग रंगमें फँसा हुआ है, इसलिये उसे किसी तरहसे भी निकालना चाहिए। यों विचार करके भानुदत्तने एक नौकरको बुलाया औ उसे समझाकर कहा कि तुम चारुदत्तके पास जाओ और उसे समझा बुझाकर कहना कि भाई! अब अपने घर चलो, तुम्हारी मांने तुम्हें बुलाया है, तुम्हारे बिना सब लोग दुखी होरहे हैं और तुम्हारी चिंतामें घरके सब आदमी बीमार होगये हैं। और उसे हमारी तरफसे यह भी

समझा देना कि भाई ! मोहमें इस प्रकार विह्वल न बनो। मोह शुभ गतिको नाश करनेवाला है और कुगतिका मानों खुला हुआ दरवाजा ही है। मोहके वशीभूत होनेसे कोई सिद्धि तो होती नहीं है प्रत्युत मोहके कारण शुभ कर्तव्योंका नाश होजाता है। मोही जीव जीवनभर दुख सहता है और उसे सुखका अंश भी नहीं मिलता।

मूर्ख प्राणी ही मोहके वशीभूत होते हैं। यह मोह ही तो सब पापोंकी जड़ है। इसलिये तुम इस मोहको छोड़ो और हे रहस्यज्ञ ! अपने घर चलो। इसके अतिरिक्त और भी जो तेरे मनमें आवे वह सब समझाकर कहना। चाहे जो कुछ हो, किसी भी तरह समझा बुझाकर उसे अपने घर लेआओ।

इसप्रकार भानुदत्तने नौकरको समझाकर चारुदत्तके पास भेजा। नौकर वेश्याके घर पहुंचा और वहां चारुदत्तको नमस्कार कर सुन्दर शब्दोंमें इसप्रकार बोला कि 'हे कुमार ! मैं आपका नौकर हूं, मुझे सेठ भानुदत्तने आपके पास भेजा है, उनने जो२ बातें कही हैं उनको ध्यानपूर्वक सुनिये और उनपर विचार कीजिये। आपको माताजीने बुलाया है इसलिये जल्दी चलिये। आपके बिना घरके सब लोग बहुत दुखी हैं।

इसप्रकार जो२ बातें भानुदत्तने कही थीं नौकरने वे सब चारुदत्तसे कहीं, परन्तु चारुदत्त यह सब सुनकर मौन

ही रहे और उनने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यह देखकर नौकर बहुत दुखी हुआ और उसने भानुदत्तके पास जाकर सब हाल समझाकर कहा कि चारुदत्त नहीं आते, वह बुलानेसे नहीं बोलते तथा वे काम और मोहमें अत्यन्त अनुरक्त हैं। नौकरकी यह बातें सुनकर सेठको अपने हृदयमें बहुत दुख हुआ।

चारुदत्त वेश्याके घरपर अत्यन्त प्रेमसे सुखपूर्वक रहते थे। वेश्या उनके घरसे खर्च मंगवाती थी और भानुदत्त भेज देते थे। जब इसप्रकार बहुत समय बीत गया और घरका द्रव्य कम होने लगा तब सेठने विचार किया कि अब फिर कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे कुमार अपने घर लौट आवे। तब उनने उसी समय नौकरको बुलाकर कहा कि तुम अब फिर चारुदत्तके पास जाओ और उससे समझाकर कहो कि 'तुम्हारे पिता बहुत बीमार हैं, उनके शरीरमें अत्यन्त पीड़ा है, उन्हें तृषित नेत्रोंसे तुम्हें देखनेकी बड़ी इच्छा है, इसलिये इस मायाको दूर कर शीघ्र चलो!' ऐसा समझाकर सेठने नौकरको कुमारके पास भेजा।

नौकर वेश्यागृहमें चारुदत्तके पास गया और विनयपूर्वक बोला कि मुझे आपके पिताजीने भेजा है। उन्हें भयंकर रोगने आवेश है, इसलिये वे बहुत व्याकुल हो रहे हैं। वे आपको देखनेके लिये अत्यन्त लालायित हैं इसलिये शीघ्र ही उनसे मिलनेके लिये चलिये। इत्यादि बातें सुनकर चारुदत्तने कहा कि मेरे जानेसे क्या होगा? उनकी औषधि

सुप्रसिद्ध राजवैद्योंसे कराओ, अच्छे अच्छे चिकित्सकोंको बुलाओ और उन्हें मनवांछित धन दो, जिससे वे मन लगाकर दवा करें। इसीसे पिताजीकी तबियत अच्छी होजायगी। उनके इलाज करानेमें जितना भी द्रव्य लगे, लगाओ। मैं स्वयं न तो वहां आना चाहता हूं और न आही सकता हूं। इतना कहकर चारुदत्त चुप होरहे, और कोई जवाब नहीं दिया।

तब नौकर निराश होकर सेठ भानुदत्तके पास वापिस गया और चारुदत्तका सारा हाल कह सुनाया। रुद्रदत्त यह समाचार सुनकर विकल हो उठे और कुछ समयके लिये उनका शरीर सुन्नसा होगया। वह कभी पश्चात्ताप करते थे तो कभी अपने दैवको दोष देते थे। इसप्रकार रुद्रदत्त चारुदत्तकी स्थितिको विचारते हुये अपना दुखी जीवन विताने लगे।

थोड़े दिनोंके वाद रुद्रदत्त चारुदत्तको देखनेके लिये फिर लालायित हो उठे और अपने सेवकको बुलाकर कहा कि अवकीवार फिर चारुदत्तके पास जा और उससे समझाकर कहना कि तू अपने दुष्ट स्वभावको छोड़ दे, तुम्हारे पिता आज मर गये हैं, उनका अग्निसंस्कार तुम्हारे ही हाथोंसे होगा, इसलिये चलो और उनकी अन्तिमक्रिया कर आओ। इसप्रकार नौकरको समझाकर भेजा और कहा कि अबकी बार किसी भी प्रकार चारुदत्तको अपने साथ बुलाकर लेआना।

नौकर चारुदत्तके पास गया और नमस्कार करके

बोला कि कुमार! बड़े ही दुखकी बात है कि आज आपके पिताजीका स्वर्गवास होगया है। इसलिये आप शीघ्र ही अपने घर चलिये और उनका अन्तिम संस्कार करिये। तथा अपना उत्तराधिकार सम्हालिये। यह सुनकर चारुदत्तने कहा कि मैं घर नहीं चल सकता। तू ही घर जा और अगर तगर चन्दन कुमकुमादि सुगंधित बहुमूल्य द्रव्य लेकर तथा बेशकीमती वस्त्र उढ़ाकर सब कुटुम्बी परिवारके लोग मिलकर उनका अग्निसंस्कार कर देना। और सबसे कह देना कि चारुदत्त नहीं आसकता!

यह सुनकर नौकरने चारुदत्तको बहुत समझाया, मगर वह कब माननेवाले थे? उनने एक न सुनी। तब वह अपना-सा मुँह लेकर वापिस लौट आया और भानुदत्तसे कहा कि चारुदत्तका आना अशक्य है। आपकी कही हुई सब बातें मैंने उनसे कहीं और मैंने भी बहुत कुछ समझाया, मगर उनके ध्यानमें एक भी बात नहीं आती है। यह कहकर चारुदत्तके द्वारा कही गई सब बातें भी ज्योंकी त्यों सुनादीं। यह सुनकर सेठ भानुदत्तको भारी दुख हुआ, मानो वज्रप्रहार ही होगया हो। वह रह रहकर पश्चात्ताप और विलाप करने लगे तथा उनका तन मन विकल हो उठा।

उधर चारुदत्त वेश्याके घर मनमाने भोगविलास करते थे और वेश्या-दासी प्रतिदिन चारुदत्तके घरसे इच्छित धन लेजाया करती थी। इसप्रकार धीरे धीरे छह वर्ष होगये। इतनेमें भानुदत्तकी आधी अर्थात १६करोड दीनारसे भी अधिक

सम्पत्ति स्वाहा होगई । भानुदत्तको अपने लड़केकी इसप्रकार व्यसन तत्परता देखकर भारी दुःख रहा करता था । एक दिन उनने विचार किया कि चारुदत्त मेरे लिये मात्र दुखका कारण हुआ है, अब उसका सुधरना अशक्य है । इसलिये इस दुखसे मुक्त होनेके लिये मैं तो सवेरे ही दीक्षा लेलूंगा । न जाने आगे क्या कैसा होनेवाला है । कर्मगतिको कोई नहीं जानता । बड़े २ सुर, असुर, यक्ष, खगपति, नागेश, नरेश, नारायण, चक्रवर्ती आदि सभी कर्मके अनुसार नाचते हैं । जो कुछ दैवमें लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता । इस जीवके साथ बलवान कर्म लगे हुये हैं, तदनुसार दुख सुख भोगना पड़ता है, उनका पिण्ड नहीं छूटता । कर्मके कारण ही यह जीव जगतमें चक्कर लगा रहा है । इसलिये अब इनसे पिण्ड छुड़ानेके लिये जिन दीक्षा धारण करना चाहिये । यह संसार दुखका धाम है, इसमें चक्कर लगाते हुये जीव पार नहीं पाता । अब तो प्रातःकाल ही जिन भगवानकी शरणमें जाकर दीक्षा लेना चाहिये ।

यों विचार करके तत्काल ही अपनी पत्नीको बुलाया और उससे सब हाल कह सुनाया । उसके बाद पुत्रबधूको बुलाया और उससे हृदय खोलकर सब बातें कहीं । और कहा कि हे पुत्री ! दृढ़तापूर्वक शील और संयमका पालन करना तथा श्राविकाके व्रत पालनेमें नित्य सावधानी रखना । मैं तो अब जिनेन्द्र भगवानकी शरणमें जाता हूं और वहीं जिन दीक्षा लेकर जन्म, जरा, मरणका नाश करूंगा । चारु-

दत्त यदि धन मंगावे तो उसे देती रहना । 'सच है पुत्रका मोह भी बहुत बलवान होता है ।'

इसके बाद भानुदत्तने वनमें जाकर एक मुनिराजके पास दीक्षा लेली ।

चारुदत्तकी धन हानि ।

जानास्येव जघन्यातो वृत्तिर्यद्वित्तवान् प्रियः ।
हेयः पीलितसारः स्यादिक्षवलक्तकवन्नरः ॥

—हरिवंशपुराण ।

उधर चारुदत्त दिन रात राग रंगमें मस्त रहते थे। उन्हें आगे पीछेकी कुछ भी खबर नहीं थी। वह तो भोगविलासमें मस्त होकर सब कुछ भूल गये थे । वेश्यादासी प्रतिदिन घर जाती थी और मनमाना धन लेआती थी । इस प्रकार धीरे धीरे छह वर्ष और होगये । इतनेमें बाकीका सोलह करोड़का द्रव्य वेश्या सेवनमें पूरा होगया । इस प्रकार जब सब धन समाप्त होगया तब जो बारह हजार सुवर्ण मुद्रिकायें थी वे भी समाप्त करदीं । उसके बाद मकान गहने रख दिया । फिर भी वेश्यासक्त चारुदत्तकी आंखें नहीं खुलीं । और अपनी पत्नीके गहनोंपर नियत गई । वह बिचारी सुशीला गृहिणी अपने बहुमूल्य मोतियोंके गहने कुछ दिन तक देती रही और अपने कर्मको दोष देकर दुखी हो कालयापन करती रही ।

एक दिन एक चतुर पड़ौसिन महिलाने आकर चारुदत्तकी पत्नीसे कहा कि बहिन ! तुम्हारी स्थिति अब बहुत खराब होगई है। अब तुम कुछ भी द्रव्य मत देना और उस वेश्यादासीको विनयपूर्वक समझाकर अपना सब हाल सुनाना। और उससे कहना कि मेरे पास अब कुछ भी नहीं रहा, सूत कातनेपर जो कुछ प्राप्त होता है उसीसे घरकी गुजर चलती है। यह बात हो ही रही थी कि इतनेमें ही वेश्यादासी वहां आपहुंची और बोली कि चारुदत्तने मुझे द्रव्य लेने भेजा है, इसलिये अबकीवार अधिक धन दीजिये।

तब चारुदत्तकी पत्नी मित्रवतीने उस दासीका आदर-सत्कार और अनुनय विनय करके कहा कि अब मेरे पास कुछ भी नहीं है। चर्खा कातकर सूत बेचती हूं और उससे अपना काम जैसे तैसे चलाती हूं। फिर भी यदि हमारे प्राणनाथको आवश्यक्ता हो तो मैं अपना शरीर वेचकर भी उनकी इच्छा पूरी कर सकती हूं। दासी यह बात सुनकर पिघल गई और मित्रवतीकी पतिभक्ति देखकर प्रसन्न हुई तथा बोली कि अब तुम मनमें दुख मत करो, जो होना था सो होगया। यों कहकर दासी चारुदत्तके पास गई और वेश्याके समक्ष ही चारुदत्तसे कहा कि सेठजी ! अब तो आपके यहां फूटी कौड़ी भी बाकी नहीं है। वहां तो अब चर्खेपर गुजर चलती है। तुम्हारी माता और पत्नी भूखों मरती हैं। वे जैसे तैसे अपने दिन पूरे कर रही हैं। मैं

उनके दुखका वर्णन नहीं कर सकती । आपका मकान और तमाम सामान तक बिक गया है ।

वेश्या यह समाचार सुनकर आश्चर्यचकित हो विचारने लगी कि इतनी विभूति अल्पसमयमें कहां विला गई? अब तो चारुदत्त बिलकुल धनहीन होगया है। उसे अपने यहां रखनेसे अब क्या लाभ है? यों विचार कर वसंतमालाने चारुदत्तसे स्पष्ट कह दिया कि सेठजी ! अब आप अपने घर जाइये, आपके घरमें लोग बहुत दुखी हैं। वहां अब द्रव्य तो रहा ही नहीं है, इसलिये हम आपका क्या करेंगी? जब आपका फिर अच्छा समय आवे, तब आप पुनः यहां आइयेगा ।

चारुदत्तने वसंतमालाकी यह सब बातें चुपचाप सुन लीं और विषकासा घूंट पीकर निरुत्तर हो बैठा रहा। और मन ही मन विचारने लगा कि धनके विनाश होनेकी मुझे विशेष चिन्ता नहीं है । क्योंकि यह तो भाग्यानुसार आता है और जाता है किन्तु दुख इस बातका है कि धनहीन होनेपर स्नेही भी स्नेह छोड़ देते हैं । *

फिर भी उसे घरकी कोई चिन्ता नहीं थी । वह तो

---

*सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता,
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य,
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ॥
—मृच्छकटिकम् ।

मात्र वेश्या-पुत्री वसंततिलकामें तल्लीन था। उसे उसके सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था। वसंततिलका भी चारुदत्तको प्राणोंसे भी अधिक प्यारा समझती थी। और उसे एक पलभरके लिये भी नहीं छोड़ती थी। इस अटूट प्रेमको देखकर वसंतमाला मन ही मन कुढ़ने लगी। और भीतर ही भीतर गालियां तक देने लगी। एक दिन उसने एकांतमें वसंततिलकासे कहा कि पुत्री! मेरी एक बात सुन! वेश्याओंकी यह नीति है कि जो धनहीन होगया हो उससे प्रीति छोडकर किसी धनवानसे प्रेम करना चाहिये। वेश्या-शास्त्र कहता है कि द्रव्यहीन पुरुषसे समागम नहीं करना चाहिये। वेश्यायें तो धनवानोंको भोगती हैं, वे धन-हीनोंकी संगति कदापि नहीं करतीं। वेश्याओंकी यही रीति है, इसलिये अब तू चारुदत्तसे प्रेम करना छोड़दे।

जिसके घरमें द्रव्यके बिना सब लोग दुखी होरहे हैं और भूखे रहकर दिन बिता रहे हैं तथा जिनके यहां खाने पीनेके लिये कुछ भी नहीं रहा है उससे तू प्रीति कर रही है, यह गणिकाओंकी रीतिके विरुद्ध है। इसलिये बेटी! अब तू चारुदत्तसे प्रेम करना छोड़दे और उसे अपने घर जानेदे, जिससे वह अपने कुटुम्ब परिवारसे मिले और अपने काममें लग जाय। इसप्रकार अनेक बातें कहकर वसंत-तिलकाको समझाया। माताकी तमाम बातें सुनकर वह मधुर वचनोंसे बोली कि माताजी! इस भवमें तो मेरा पति चारुदत्त ही है, दूसरे सब भाई और पिताके समान हैं। मैं

तो इस जीवनके लिये चारुदत्तको ही अपना स्वामी निश्चित कर चुकी हूं। इसके सिवाय अन्य पुरुष कुवेरके समान भी धनवान क्यों न हो तो भी वह मेरे कामका नहीं है। मां ! जिसके घरसे आई हुई करोड़ों दीनारोंसे तेरा घर भर गया उसीको तू त्याग कराना चाहती है ? चारुदत्त तो अनेक कलाओंमें पारंगत है, परम सुन्दर है, उत्तम धर्मका परमोपदेष्टा है, महा उदार है, त्यागी है, भला मैं उसका कैसे त्याग कर सकती हूं ? *

यह उत्तर सुनकर वसंतमालाका जी जल गया। और चिन्तामें पड़ गई तथा विचारने लगी कि इन दोनोंका प्रेम बहुत गहरा है। इनकी प्रीतिकी रीति निराली है। इसे किसी प्रकार भी छुड़ाना चाहिये। और चारुदत्तको अपने घरसे निकालना चाहिये। इस प्रकार वह अनेक तरहसे विचार करती थी और मन ही मन गालियां दिया करती थी।

एक दिन वसंतमालाको एक उपाय सूझा और उसने चारुदत्त तथा वसंततिलकाके भोजनमें कोई मादक वस्तु मिलादी। दोनोंने आनन्दसे भोजन किया और रात्रिको बेखबर होकर सोगये।

---

* कौमारं पतिमुज्झित्वा चारुदत्तं चिरोषितं।
कुवेरेणापि मे कार्यं नेश्वरेण परेण किं ॥
कलापारमितस्यांव रूपातिशययोगिनः।
सद्धर्मदर्शिनो मेऽस्य स्यात्त्यागस्त्यागिनः कुतः ॥
—हरिवंशपुराण।

चारुदत्तका विष्टाग्रहमें पतन ।

पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनम् ।
सर्पश्चोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च ॥ मृच्छकटिकम् ।

जब दो घड़ी रात बीत गई तब वसन्तमालाने उन्हें बेभान स्थितिमें पाया । यह देखकर वह मन ही मन खूब प्रसन्न हुई और सोचा कि अब मेरा मनोरथ सिद्ध होगया । यों विचार कर उसने चारुदत्तके सब आभरण उतार लिये और उसके हाथ पांव बांधकर उसे एक कम्बलमें लपेटा और गठरी बांध दी । चारुदत्त तो नशेमें चूर था इसलिये उसे कुछ भी खबर नहीं पड़ी । तब वेश्या वसन्तमालाने उस गठरीको उठवाकर एक विष्टागृहमें डलवा दी ।*

उसने चारुदत्तको विष्टागृहमें डालते हुये तनिक भी संकोच नहीं किया । विष्टागृहमें पड़े पड़े चारुदत्तने जो कष्ट सहा उसे वही जानते थे या उसके ज्ञाता सर्वज्ञ हो सकते हैं । चारुदत्तका सारा शरीर बंधा हुआ था, इसलिये वह सुध आनेपर भी नहीं उठ सकते थे । थोड़ी देरमें उन्हें नशाके कारण फिर तन्द्रासी आजाती थी । और कुछ समय बाद वह थोड़ासा सिटपिटाने भी लगते थे ।

---

*चारुदत्तको पाखानेमें डालनेकी या आगे लिखी हुई कोई ऐसी बात हरिवंशपुराण या आराधनाकथाकोश आदिमें नहीं है । वहां तो मात्र घरसे निकाल देनेकी ही बात लिखी है ।

इतनेमें एक सूकरी विष्टा खानेके लिये विष्टागृहमें गई और चारुदत्तका मुंह चाटने लगी। चारुदत्तने समझा कि वसन्ततिलका ही मुझे आलिंगन कर रही है और मैं उसके महलमें पड़ा हुआ हूं। इसलिये मदमत्त चारुदत्त बोले कि वसन्ततिलके! मुझे बहुत नींद आरही है, तू क्यों सताती है? अभी तू अलग होजा और जब मैं जागूं तब बोलना। मोही एवं ज्ञान भ्रष्ट चारुदत्त इसी प्रकार बड़ी देर तक प्रलाप करते रहे। उन्हें अपनी दुर्दशाका तनिक भी भान नहीं था। वास्तवमें कर्मकी गति बड़ी ही विचित्र है। कहां तो वह गुणवान पुरुष और उसकी चतुराई तथा कहां उसका यह अपमान!

चारुदत्त वहां पड़े हुये अत्यन्त दुःख सहन कर रहे थे, फिर भी उन्हें वसन्ततिलकाका ही ध्यान था। उन्हें और कुछ नहीं सूझता था, वह तो मात्र वसन्ततिलकाका ही नाम रट रहे थे। इतनेमें उधरसे नगररक्षक एक कोतवाल निकला और उसने वह आवाज सुनी। आवाजके सुनते ही वह चौकन्नासा होगया और इधर उधर देखने लगा। थोड़ी देरमें उसे मालूम हुआ कि पासके ही पाखानेमेंसे किसी मनुष्यकी आवाज आरही है। यह निश्चय करके कोतवालने तुरत ही अपने सिपाहीको बुलाया और कहा कि इस पाखानेमें कोई आदमी मालूम होता है। तुम वहां जाओ और उसे वहांसे लेआओ।

सिपाही पाखानेमें गया और वहांपर किसी आदमीको बंधा हुआ पड़ा देखकर कहा कि तू कौन है ? तेरा क्या नाम है ? तू किस जगहका रहनेवाला है ? तेरे मां बापका क्या नाम है ? तू रातको यहांपर क्यों और कैसे आया है ? तुझे इस प्रकार किसने बांधा है ? और यहांपर कौन डाल गया है ? तमाम हाल मुझसे कहदे, मैं तुझे यहांसे छुड़ाकर यथेच्छ स्थानपर पहुंचा दूंगा।

यह सुनकर चारुदत्तने कहा कि मैं इसी नगरका रहनेवाला हूं, मेरे पिताका नाम भानुदत्त सेठ है और मेरा नाम चारुदत्त है। मुझे यहांपर वेश्याने बेभान स्थितिमें डाला है। यह सुनकर सिपाहीने कोतवालको सब हाल सुनाया। कोतवालने तुरत ही चारुदत्तको पहिचान लिया। और उसे उसी समय विष्टागृहसे निकाल कर बन्धनमुक्त कर दिया। उसके बाद चारुदत्तको बहुत धिक्कारा और कहा कि तुम्हारे पिता तो बड़े ही धर्मात्मा सज्जन हैं, उनके तुम ऐसे कपूत पैदा हुये हो ? सेठजीकी ३२ करोड़ दीनारकी सम्पत्ति थी, वह तुमने कुकर्ममें पड़कर स्वाहा करदी और जन्मभरके लिये अपने सिरपर अपयशका टीका लगाया है

इस कथाको लिखते हुये ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि हे सज्जनो ! परस्त्रीका त्याग करो। इस काम बुद्धिका त्याग कर कामदेवको वशमें करो। ऐ मूर्ख प्राणी ! इस लडकपनको छोड़ दे। तेरे कुकृत्यको जानकर लोग हंसेंगे और तेरी मान प्रतिष्ठा धूलमें मिल जायगी। इसलिये परस्त्रीका

त्याग कर! मैं हाहा करके विनती करता हूं कि हे भाइयो! मेरी शिक्षाको ग्रहण करो। जो मूर्ख स्वस्त्रीको छोड़कर परस्त्री या वेश्या सेवन करते हैं उनके जीवनको धिक्कार है। ऐ सज्जनो! जब यह पाप कथा प्रगट होजाती है तब मान-प्रतिष्ठा धूलमें मिल जाती है। इसलिये फिर भी मैं एकबार प्रार्थना करता हूं कि परस्त्री और वेश्याका त्याग करो। जो मूर्ख अपना धन खोकर परस्त्री सेवन करेंगे उनकी चारुदत्तके समान दुर्गति होगी। और वे अन्तमें महादुखदायी दुर्गतिमें जांयगे।

चारुदत्तकी दशा देखकर कोतवाल अपने मनमें नाना प्रकारके विचार करने लगा और कर्मोंको दोष देने लगा। तथा कहने लगा कि तकदीरकी लकीरको कोई नहीं मिटा सकता जो कुछ भाग्यमें बदा होता है वह होकर ही रहता है। कभी राजा अपने दलबल सहित हाथियोंपर सवारी करके सुखपूर्वक विहार करते हैं और कभी वे ही भाग्यका फेर होनेपर रंक दशामें दानेदानेको मुहताज होकर भीख मांगते फिरते हैं। कभी यह जीव इन्द्रिय-सुखमें मग्न रहता है तो कभी उसके परिणामस्वरूप नर्कोंमें महान् दुख भोगता हैं। तात्पर्य यह है कि विधिका विधान अमिट है। कर्म जो करता है वह होकर ही रहता है। स्वर्गलोक मध्यलोक या पाताल लोक कहीं भी ढूँढ़कर देखो तो मालूम होगा कि कर्मके समान बलवान दूसरा कोई नहीं है।

इसप्रकार बहुत कुछ कहकर कोतवाल अपने कामपर चला गया और चारुदत्तको उसके मकानपर भिजवा दिया।

चारुदत्तका गृहागमन ।

एतत्तु मां दहति यद्गृहमस्मदीयं ।
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति ॥
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः ।
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम् ॥

—मृच्छकटिकम् ।

चारुदत्त अपने मकानपर गया और भीतर प्रवेश करने लगा । इतनेमें पहरेदारने भीतर जानेसे रोका, जो उस सेठकी तरफसे नियत किया गया था जिसके यहां चारुदत्तका वह मकान गहने रख दिया गया था । चारुदत्तने कहा कि तू मुझे क्यों रोकता है ? यह तो सेठ भानुदत्तका मकान है । तब नौकर बोला कि भाई ! यह तो गहने रख दिया गया है । यह सुनकर चारुदत्तको भारी दुःख हुआ । और कांपते हुये उस सिपाहीसे पूछा कि हमारी माता और पत्नी कहां रहती हैं ? क्या तुम बतानेकी कृपा करोगे ? तब उस पहरेदारने कहा कि आप घबराइये नहीं, मेरे साथ आइये । यों कहकर वह चारुदत्तको उसकी माता और स्त्रीके स्थानपर लिवा लेगया और एक झोंपडी दिखाकर कहा कि वे इसीमें रहती हैं *

चारुदत्त झोंपड़ीके भीतर गये और माताके चरणोंमें

* हरिवंशपुराणमें अपने मकानमें जानेका ही कथन है। मकान विकने और झोंपड़ीमें रहने तथा सूत वेचने आदिकी कोई बात नहीं है।

जाकर लौट गये! वह लज्जाके मारे मानों धरतीमें गड़ जाते थे और मन ही मन विचार करते थे कि दुःखानुभवके बाद सुखका होना तो शोभता है किन्तु सुखी होनेके बाद जो दुखी दरिद्री होजाता है वह जीता हुआ भी मरेके समान है।* दरिद्रता और मरणमेंसे मरण अच्छा है, कारण कि मरणमें अल्प क्लेश होता है और दरिद्रता सदा दुख देती है ×

चारुदत्तकी दीन हीन, मैली कुचैली दशा देखकर उनकी माता और स्त्रीको भारी दुःख हुआ। बादमें माताने चारुदत्तका उबटन करके स्नान कराया और अच्छे कपड़े पहिननेको दिये। इसके बाद चारुदत्त माताके गले लग गये और फूट २से रोने लगे और अपनी निन्दा करने लगे। तथा बहुत विलाप करते हुए बोले कि माताजी! मैं बड़ा पापी हूं, मूर्ख हूं, दुष्ट हूं। मैंने संसारभरमें बदनामी कराई है।

इसके अतिरिक्त चारुदत्तने अपनी मातासे और भी सुख दुखकी सभी बातें कह सुनाई।

तब माताने आंखोंमें आंसू भरकर कहा कि बेटा!

---

* सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।
घनांधकारेष्विव दीपदर्शनम्॥
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां।
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति॥

× दारिद्र्यान्मरणाद्वा, मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥
—मृच्छकटिकम्।

तूने बत्तीस करोड़ दीनारकी सम्पत्ति वेश्याके यहां गंवा दी और ऊपरसे यह अपयश उठाना पड़ा। तथा तेरे पिताजी भी तेरे ही दुखसे दुखी होकर चले गये हैं। यह सब दुख कथा सुनकर चारुदत्त बहुत दुखी हुए और फिर वह अपनी पत्नीके पास गये।

जब चारुदत्तसे उनकी पत्नी मित्रवती मिली तब वह खूब रोई और अपनी तमाम दुख कहानी सुनाई। चारुदत्त भी सब बातें सुनकर बहुत दुखी हुये और बोले कि प्रिये! तुम गुणवती हो, शीलवती हो, धैर्यवती और अद्वितीय वल्लभा हो। किन्तु मैं पापोंकी खान, महान दुष्टात्मा हूं। मैंने तुझे बहुत दुःख दिया है। तुझ जैसी सुशीला पत्नीको त्यागकर मैं वेश्या-व्यसनी बना और धर्म खोया। उसने मेरा तमाम धन खींच लिया और निर्धन होनेपर उसकी माताने मुझे विष्टागृहमें डालकर बड़ी दुर्दशा की और नरकोंसे भी अधिक दुःख दिया। जबतक मेरे पास धन रहा, तबतक वेश्याने खूब प्रेम किया और धनहीन होनेपर उसकी माताने मेरा भारी अपमान किया है।

सच है, भाग्यके क्षीण होनेपर मित्र भी शत्रु होजाते हैं। और जो सदासे प्रेम करते आते हैं वे भी प्रेमका त्याग कर देते हैं।*

---

* यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां,
नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां,
चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः॥ —मृच्छकटिकम्।

अस्तु, जो होना था सो हो चुका। जो भाग्यमें लिखा होता है वह होकर ही रहता है। संसारमें कर्म महान् बलवान हैं, उन्हें कोई टाल नहीं सकता। ग्रन्थकार कहते हैं कि सूर्य पूर्वमें उदय न होकर पश्चिममें उदय हो जावे, मेरु पर्वतपर कमल खिलने लगें, चन्द्रकलामें अग्नि जलने लगे, समुद्रकी थाह प्राप्त होजावे सर्पके मुखमें अमृतका वास होजावे, अग्निसे रुई न जलें; तात्पर्य यह है कि ये सब असंभव कार्य एक बार भले ही होजावें, किंतु करोडों उपाय करनेपर भी विधिका विधान अन्यथा नहीं होसकता।

यथा—कबहूं रवि आन उगे दिश वारुन सागर थाह किनी जु धरै।
मेरुपै फूल कदाचित अंबुज, इन्दुकलाहुमें आगि जरै॥
अमृत वास करै अहिके मुख, तूल हुतासनमें न जरै।
कोटि उपाय करो 'भारामल' कर्म लिखी कबहूं न टरै॥

सच बात तो यह है कि भले ही बुद्धिमान लोग लाखों उपाय करें किंतु जो नहीं होना है, वह कभी हो नहीं सक्ता। और जो होनहार है, वह मिट नहीं सकती। मैंने पूर्व भवमें जो कर्मबन्ध किया था, उसका यह फल भोगता हूं अब मुझे फिर अपने भाग्यकी परीक्षा करना है। मेरा विचार विदेशमें निकल जानेका है। वहांपर डटकर व्यापार करुंगा और खूब द्रव्य कमाकर लाऊंगा। प्रिये! मैंने सवेरे ही विदेश प्रयाण करनेका निश्चय कर लिया है

यह सुनकर मित्रवती बोली कि पतिदेव! विदेशगमनकी बात सुनकर मुझे भारी दुख होता है। विदेश न जाकर अपने

घर ही रहिये और यहींपर छोटा मोटा व्यापार करिये। मैं भी प्रतिदिन सूत कातूंगी और उससे गुजर चलाऊंगी। मेरे सूतकी आयसे अपना खर्च भलीभांति चल सकेगा। इसलिये विदेश जानेका विचार छोड़ दीजिये। यहींपर साथ ही रहकर सुख दुखसे अपने दिन अच्छी तरह कट जांयगे। बाहर न जाने कैसे कैसे सुख दुख पड़ेंगे। वहां कौन सहायक होगा? इसलिये हे नाथ! इस दासीकी प्रार्थनाको स्वीकार करिये। आपको यह उचित नहीं है कि आप मुझे यहां अकेली छोड़कर स्वयं परदेश चले जावें।

धन कमानेकी चिन्ता।

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ॥

—मृच्छकटिकम्।

चारुदत्त मित्रवतीकी बातें सुनकर बोले कि प्रिये! तुम ठीक कहती हो, किन्तु धनके विना काम नहीं चल सकता। यहां रहकर धन कमाना अशक्य है। धनके विना न तो मान सन्मान होता है और न कोई बात ही पूछता है। धनके विना पूत कपूत कहलाता है और धन विना विद्वानकी भी कोई कीमत नहीं रहती। धन विना सेवक सेवा नहीं करता। राजा भी धनके विना मारा मारा फिरता है। धनके विना कोई भी काम नहीं हो

सकता । धन हीनकी न तो कोई संगति करता है और न कोई आदरपूर्वक बुलाता ही है। जहां देखो वहीं निर्धनका अनादर होता है। यदि सच पूछा जाय तो निधनता एक प्रकारका छट्ठा पाप ही है। * इसलिये मैं धन कमाने अवश्य जाऊँगा। यहां रहकर तो भूखों ही मरना होगा। विदेश जाकर द्रव्य कमाऊंगा और तब कुछ सुख शांति मिलेगी।

यह सुनकर मित्रवती बोली कि मैं तो विशेष क्या कह सकती हूं, किंतु आप अपने काकाजी तथा माताजीकी भी सलाह कीजिये और जैसा वे कहें सो करिये। चारुदत्तको यह सलाह अच्छी लगी, और वह माताके पास गये तथा विनयपूर्वक बोले कि माताजी! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं विदेश जाऊँ और वहांपर कुछ उद्योग करके धन कमाऊँ। कुछ द्रव्य होनेपर ही काम चलेगा, इसलिये आप अपनी अनुमति दीजिये। यह सुनकर चारुदत्तकी माताको बहुत दुख हुआ और बोली कि बेटा! तू यह क्या कह रहा है? यह अयोग्य बात सुनकर तो मुझे भारी दुख होरहा है। तू अब ऐसी बातें मत कर। मेरे लाल! विदेशमें क्या धरा है? जो कुछ भी उद्यम बन सके सो अपने देशमें रह-

---

* संगं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते, संभाषते नादरा-
त्संप्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोकते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया,
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ॥
—मृच्छकटिकम्।

कर ही करो । तू बारह वर्ष बाद मिला है, इसलिये मैं तुझे देखकर अपने सब दुख भूल गई हूं । तेरी कुशलतामें ही मुझे आनन्द है । इसलिये यहीं मेरी आंखोंके सामने रहकर उद्योग धंधा कर । बाहर जाना किसी भी तरह योग्य नहीं है।

तब चारुदत्त बोले कि माताजी ! मैंने बहुत अपयश सहा है और घरमें द्रव्य भी नहीं रहा, इसलिये अब मुझसे मुँह नहीं दिखाया जाता । मैं नगरमें क्या मुँह लेकर फिरूँगा ? अब कौन विश्वास करेगा ? मुझे तो सभी लोग तूलके समान तुच्छ समझेंगे । दरिद्रता सर्वत्र शंकाका स्थान बन जाती है ।* इसलिये विदेश जाकर जब मैं अच्छा धन कमाकर लाऊँगा तभी घरमें प्रवेश करूँगा । आप विश्वास रखियें कि मैं धन कमाकर शीघ्र ही आपकी सेवामें वापिस लौटूंगा ।

इस प्रकार चारुदत्तने अपनी माताको अनेक प्रकारसे समझाकर निरुत्तर कर दिया । देवलने भी जब चारुदत्तका दृढ़ निश्चय जाना तब उसने अपने भाईको बुलाया और उससे कहा कि भाई ! मैंने चारुदत्तको बहुत समझाया, मगर वह अपने परदेशगमनके निश्चयको नहीं छोड़ता है । तेरा तो यह जमाई है, अब तू भी इसे कुछ समझावे तो अच्छा है । सम्भव है कि तेरे कहने सुननेसे यह मान जावे । यह सुनकर सिद्धार्थने चारुदत्तसे कहा कि कुमार ! परदेशमें जानेसे

---

* कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति ।
शंकनीया हिं लोकेऽस्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता ॥
—मृच्छकटिकम् ।

क्या लाभ है ? तुम्हें जितने धनकी आवश्यक्ता हो मैं देनेको तैयार हूं । मेरी सोलह करोड़की सम्पत्ति है । बोलो, तुम्हें कितना धन चाहिये ? यथेच्छ द्रव्य लेकर तुम यहींपर मन लगाकर व्यापार करो और जब तुम्हारे पास पर्याप्त धन होजाय तब मेरा रुपया मुझे दे देना ।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि मेरा दृढ़ निश्चय नहीं टल सकता । मुझे अब यहां रहना अच्छा नहीं लगता । परदेशमें जाकर भलीभांति उद्यम करूँगा और उद्यमसे ही द्रव्य कमाऊँगा । उद्यमसे ही धन मिलता है और उद्यमसे ही सब कार्योंकी सिद्धि होती है । उद्यमके विना कुछ काम नहीं होसकता । संसारमें उद्यम ही प्रधान है । इसलिये निश्चय ही मैं विदेश जाकर उद्यम करूंगा । यहां रहना तो मुझे मौतसे भी अधिक बुरा लगता है । यह सुनकर सिद्धार्थ निरुत्तर होकर चुप रह गया ।

इसप्रकार चारुदत्तका निश्चय जानकर माता देवलकी आंखें भर आई । वह आंसू बहाती हुई बोली कि बेटा ! पहिले तो तू पढ़ता रहा इसलिये मेरे साथ नहीं रह सका । फिर तूने बारह वर्ष वेश्याके घर बिताये, तब मैंने वह दिन बड़े ही दुखमें काटे । और अब जैसे तैसे तेरा मुंह देख पाया तो तू इसप्रकार अप्रिय बातें सुना रहा है । बेटा ! इस बूढ़ी मां पर दया कर, और परदेशगमनका विचार छोड़दे । इत्यादि ।

चारुदत्तको तो अपने नगरमें रहना मरनेसे भी बुरा

लग रहा था इसलिये वे विनयपूर्वक समझाकर मातासे कहने लगे कि मुझे यहां रहते हुये भारी लज्जा आती है, इसलिये मैं यहां किसी भी तरह नहीं रह सकता। अब मैं तुझसे विशेष क्या कहूँ ? मेरी आन्तरिक दशाको जानकर तू मुझे आज्ञा दे दे, यही अच्छा है। जैसे तूने इतने दिन निकाले हैं वैसे कुछ दिन और सही। अपनी पुत्रवधूसे सेवा कराना और आनन्दसे रहना मैं जल्दी ही लौटकर आऊँगा। यों कहकर चारुदत्तने एक चतुर ज्योतिषीको बुलाया तथा उससे शुभ मुहूर्त निकलवाकर जानेका दिन निश्चय किया। मार्ग-व्ययके लिये कुछ भी पासमें नहीं था, इसलिये अपनी स्त्रीके बचे हुये गहने लेकर चलनेकी तैयारी की।

विदेशगमन।

अहो पुण्यं विना जन्तोर्नोद्यमो सिद्धिदो भवेत्।
तस्मात् पुण्यं जिनेन्द्रोक्तं कर्तव्यं धीधनैः सदा॥

—आराधना कथाकोश।

प्रातःकाल होते ही चारुदत्तने धन कमानेकी इच्छासे परदेशके लिये प्रयाण किया। जब उनके मामाने यह खबर सुनी तो उसे भारी दुख हुआ। और मोहके वशीभूत होकर चारुदत्तके पीछे पीछे गया। और थोड़ी देर बाद चारुदत्तको पाकर कहा कि मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। इसप्रकार दोनों परदेशके

लिये रवाना होगये। मार्गमें अपने परिचित ग्राम, गली, बाग, नदी, तालाब और जंगल आदिको तय करते हुये दोनों चले जाते थे। कुछ दिनोंके बाद वे वलाका देशमें पहुंचे * और वहां सीघावती नदीके तटपर टिक रहे। मार्गमें

* व्यापार सम्बन्धी इस प्रकरणमें प्राय: सभी कथाओंमें बहुत पाठभेद है। किसने किस आधारसे ऐसा लिखा है सो जानना कठिन है। (१) हरिवंशपुराणमें यह प्रकरण इस प्रकार है:—

चारुदत्त अपने मामाके साथ सबसे पहले उशीरावर्तमें गये। वहां कपास खरीदा और ताम्रलिप्त नगरीमें बेचनेके लिये लेगये। मार्गमें बनाग्नि लग जानेसे कपास जल गया। तब चारुदत्त मामाको छोड़कर घोड़ेपर सवार हो पूर्वदिशाकी ओर गये। मार्गमें घोड़ा मर गया। तब चारुदत्त पैदल ही जैसे तैसे प्रियंगुपुर नगरमें पहुंचे। वहां अपने पिताके मित्र सुरेन्द्रदत्तके पास रहे। वहांसे समुद्र यात्रा की। ६ बार सफलता मिली। सातवीं बार जहाज फट जानेसे कमाई हुई ८ करोड़की सम्पत्ति नष्ट होगई। समुद्रमें एक तख्तेके सहारे किनारेपर आये। वहां एक साधुसे भेट हुई।"

(२) आराधना कथाकोशमें यह प्रकरण कुछ परिवर्तनके साथ इसप्रकार है—"चारुदत्त मामाके साथ सबसे पहले उल्लखदेशके उशीरावर्त नगरमें गया। वहां उसने कपास खरीदा और ताम्रलिप्ता नगरीमें बेचनेको गया। मार्गमें बनाग्निके कारण कपास जल गया। वहांसे चारुदत्त समुद्रदत्तके जहाज द्वारा पवनद्वीपमें गया। वहां बहुत धन कमाया। फिर देशकी ओर लौट रहा था कि जहाज फटा और सब माल डूब गया। इसप्रकार सात बार हुआ। अन्तमें वह भी समुद्रमें गिरा और एक तख्तेके सहारे किनारेपर पहुंचा। वहांसे वह राजगृह नगरमें पहुंचा, वहां एक सन्यासीसे भेट हुई।"

उनने व्यापारके लिये अनेक जगह कई प्रयत्न किये, किन्तु कहीं भी सफलता नहीं मिली।

तब दोनों दुखी होकर बोले कि न जाने भाग्यमें क्या बदा है। अपने पास कोई ऐसी अच्छी पूंजी भी नहीं है कि जिससे कोई व्यापार किया जासके। जो कुछ थोड़ा बहुत है उससे क्या होसकता है? फिर भी वे हताश नहीं हुये और निश्चय किया कि थोड़ी पूंजीसे कोई छोटा ही व्यापार करेंगे। यह विचार करके उनने मूरा खरीदे। और उनकी गठरी बांधकर दोनों अपने सिरपर रखकर दूसरे नगरको चल दिये। चलते चलते वे पलासपुर नगरमें पहुंचे। वह पलासपुर नगर बहुत ही वैभव सम्पन्न था। वहांके बाजार बहुत ही सुन्दर थे। वहांपर अति उच्च मंदिर भी एकसे एक

(३) बखतावरमल कृत आराधना कथाकोषमें यह प्रकरण इसप्रकार है—"चारुदत्त मामाके साथ सर्व प्रथम उलुरवलदेशके मूसरावर्त नगरमें गया। वहां कपास खरीदकर बोरा भरवाकर ताम्रलिप्त नगरीको गया। मार्गमें अग्नि लगनेसे कपास भस्म होगया। फिर वह समुद्रदत्त सेठके साथ पवनद्वीपमें गया। वहां धन कमाया। और देशको आरहा था कि मार्गमें ७ वार जहाज फटा और लकड़ीके सहारे किनारेपर लगा। राजगृहीमें आकर एक साधुसे भेट हुई।"

इसप्रकार परस्पर नाम ग्राम आदिमें फर्क है। चारुदत्तचरित्रमें तो और भी अधिक परिवर्तन है। उसमें मूरोंका व्यापार करना, बलाका देशसे ताम्रलिप्तनगरतक मूरोंकी गठरी सिरपर लेजाना और वहां वृषभध्वज सेठके यहां रहकर भी मूरोंका व्यापार करना आदि अनेक बातें ऐसी हैं जो अन्य कथाग्रन्थोंमें बिलकुल ही नहीं हैं।

वढ़कर सुन्दर शोभायुक्त थे। मंदिरोंके दरवाजोंकी कला तो देखते ही वनती थी। उन मंदिरोंपर स्वर्णकलश सूर्यकी भांति चमकते थे। उस नगरको देखकर चारुदत्त और उनके मामा खूब प्रसन्न हुये तथा दोनोंने नगरमें प्रवेश किया। उस नगरमें सम्पत्तिशाली 'वृषभध्वज' नामका नगरसेठ था। उसीके मकानपर दोनों गये और नगरसेठको अपना सव हाल सुनाया। यह सुनकर सेठको दया आगई और वह अपने मकानमें उन दोनोंको भीतर लेगया तथा प्रेमपूर्वक भोजन कराया। भोजनके वाद उन्हें वहीं रहनेके लिये स्थान भी दिया। दोनों वहीं रहकर मूरोंकी दुकान करने लगे। कुछ दिनों तक उनने खूव ही परिश्रम पूर्वक मूरोंका व्यापार किया जिससे चार पैसे उनके हाथमें होगये।

कुछ अधिक द्रव्य संचय होजानेके वाद उनने कपासका व्यापार प्रारम्भ किया। धीरे धीरे उनका व्यापार वढ़ने लगा। उसी नगरमें एक कंजन नामका वनजारा था। वह अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे वैल और गाड़ियां भरकर व्यापारार्थ दूसरे देशको जारहा था। उस वनजारेके साथ वहुतसे वड़े वड़े व्यापारी थे। इसलिये जानेके पूर्व नगरभरमें खूव चर्चा होरही थी। तथा गाजेवाजेके साथ जानेकी तैयारियां होरही थीं। चारुदत्तने भी जव यह वात सुनी तव उनने मामासे कहा कि यदि अपन भी इसके साथ होजावें तो अच्छा है।

मामाने भी इसमें अपनी सम्मति प्रगट की और उसी

समय चार बैल खरीद लिये। उनपर कपास लादकर वे उस टांडेके साथ हो लिये। मार्गमें ठहरते ठहरते सब व्यापारी आनन्दपूर्वक चले जाते थे, किन्तु दुर्भाग्यवश एक जंगलमें भीलोंने व्यापारियोंको लूट लिया। चारुदत्त और सिद्धार्थके भी बैल लूट लिये गये तथा कपासमें उन दुष्ट भीलोंने आग लगादी जिससे वे बहुत दुखी हुये। यहां नीतिकार कहते हैं कि पुण्यके विना उद्यम सिद्धिदायक नहीं होता है। इसलिये बुद्धिमानोंको जिनेन्द्रोक्त मार्गपर चलकर पुण्य सम्पादन करना चाहिये।

चारुदत्तके पास अब कुछ भी नहीं बचा था। फिर भी वे दोनों साहस करके ऊजड़ बनमें भटकते भटकते एक नदीके किनारे पहुंचे। वहांसे उन्हें मलयागिरि पर्वत दिखाई दिया। वे दोनों साहस करके उसपर चढे। चढ़ते चढते उसकी चोटी तक पहुंच गये। वहां उन्हें रत्नोंकी एक खान दिखाई दी। उसे देखकर वे दोनों खूब प्रसन्न हुये और रत्नोंको लेकर नीचे उतरे। मार्गमें वे दोनों अपने भाग्यको सराहते हुये तरह तरहके विचार करते जारहे थे कि कुछ दूर जाकर उन्हें भील मिले और उनने अनेक प्रकारका भय बताकर सब रत्न छीन लिये। जैसे तैसे प्राण बचाकर चारुदत्त अपने मामाके साथ वहांसे छूटे और अपने भाग्यको दोष देने लगे। फिर उनने साहस नहीं छोड़ा और उद्योगके लिये आगे बढ़े। मार्गमें भयंकर वन-अटवियोंको पार करते हुए और णमोकार मंत्रका स्मरण करते हुए वे दोनों आगे कुछ

दिनोंके बाद प्रियंगुवेला नगरीमें पहुंचे। उस नगरीमें प्रवेश करते ही उनका तमाम दुख शोक मिट गया और नगरकी शोभा देखकर मन प्रसन्न होगया।

वे दोनों बाजारकी सुन्दर रचना देखते हुये और गगनचुम्बी महलोंको देखते हुये, एक सेठके मकानपर जा पहुंचे। सेठका नाम सुरेंद्रदत्त था। वह चारुदत्तके पिता भानुदत्तका मित्र था। चारुदत्त और सिद्धार्थ दोनों उसके पास गये और सुरेन्द्रदत्त सेठसे जुहार की। और अपना सब हाल सुनाया। सुरेंद्रदत्त सेठने भी यह समझकर कि चारुदत्त हमारे मित्रका पुत्र है। बहुत प्रेम प्रगट किया। तथा सब कुशलक्षेम पूछकर उन्हें आश्वासन दिया। बादमें उन्हें स्नानादि कराके भोजन कराया और पहिननेको उत्तमोत्तम वस्त्र दिये। तथा उन्हें अपने पास ही रक्खा।

कुछ दिनोंके बाद सेठ सुरेन्द्रदत्तने व्यापारार्थ विदेश जानेका निश्चय किया और विविध वस्तुओंसे अनेक जलयंत्र (जहाज) भरवाये। तथा साथमें सिपाही, योद्धा, सवारी, ईंधन, अन्न, पानी एवं सभी प्रकारकी आवश्यक सामग्री साथमें ली। कारण कि इस बार बारह वर्षके बाद लौटनेका निश्चय था। शुभ मुहूर्त आनेपर बड़ी धामधूम और गाजे-बाजेके साथ सुरेन्द्रदत्त सेठके जहाज रवाना हुये। साथमें उसने चारुदत्त और सिद्धार्थको भी लिवा लिया।

अनुकूल वायु होनेसे जहाज बड़े ही वेगके साथ चले जा रहे थे। पानीकी जबरदस्त थपेड़ोंसे कभी कभी जहाज

डवाडोल भी हो जाते थे। सभी लोग णमोकार मंत्रको जपते हुये अपनी यात्राकी कुशलताकी अभिलाषा कर रहे थे। इस प्रकार चलते चलते बहुत दिन होगये और जहाज अनेक देशोंको पार करते हुये सागरके किनारे एक द्वीपके पास पहुंचे। सभी लोगोंने उतर कर वहां विश्राम किया। वह द्वीप व्यापार-प्रधान था। वहांपर सबने बडी ही कुशलताके साथ व्यापार किया। जो माल भरकर लेगये थे, उसे बेचा और वहांकी बिक्री योग्य वस्तुयें जहाजमें भरीं। इस प्रकार व्यापार करते करते वहां बारह वर्ष व्यतीत होगये। चारुदत्तने भी अपार द्रव्य कमाया और वहांकी रत्नादि बहुमूल्य वस्तुएं खरीदीं। बादमें सबने अपने देश जानेकी तैयारी की और जहाज भरकर वहांसे देशकी ओर रवाना हुये।

संपत्ति और विपत्ति काल।

यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति॥
मृच्छकटिकम्।

यों तो चारुदत्तके जीवनमें अनेक आपत्तियां आई थीं और उनको साहस पूर्वक सहन भी किया था। किंतु मालूम होता है कि विपत्तियां उनके पीछे ही पडी थीं। अबकी बार चारुदत्तने समझा था कि हमारा भाग्योदय हुआ है और खूब द्रव्य कमाया है, इसलिये बडे ही आनन्दके साथ अपने देशमें जाकर

जीवन यात्रा करेंगे, किन्तु दैवको यह मंजूर नहीं था। समुद्रके मध्यमें जहाज बडे ही वेगके साथ चले जारहे थे कि अनायास वायुका वेग बढ़ा, जिससे जहाज बहुत हिलने लगे। यह देखकर लोगोंमें कुछ भय बढ़गया।

किन्तु अनेक प्रकारकी बातोंसे मनको सन्तुष्ट करके सब चले जारहे थे। चारुदत्त भी अपने देशदर्शनकी आशा लगाये, अनेक प्रकारके मनसुबे बांधते हुए चले जारहे थे। इतनेमें दैव रूठा, और एक महामच्छने चारुदत्तके जहाजमें ठोकर लगाई या कहीं वह बुरी तरह टकरा गया, जिससे उसके टुकड़े टुकड़े होगये। सारा सामान और सम्पत्ति समुद्रके पेटमें समा गई। चारों ओर हाहाकार मच गया। कोई किसीकी सहायता नहीं कर सका; किन्तु सब अपनी अपनी रक्षाका प्रबन्ध करने लगे। दैवयोगसे चारुदत्तको लकडीका एक तख्ता मिलगया और सिद्धार्थको भी एक लकडी मिल गई। वे दोनों उसके सहारे बहते गये। कुछ समयके बाद सिद्धार्थ एक किनारे पर जा लगा और बाहर निकलकर चारुदत्तको देखने लगा। जब चारुदत्तका कहीं पता नहीं लगा तब उसने खूब विलाप किया और दुखी होकर अपने नगरमें गया। वहांपर सबसे अपनी सारी दुःख कथा कह सुनाई जिसे सुनकर सब लोग दुःखी हुये। चारुदत्तके कुटुम्बीजनोंकी तथा चारुदत्तकी माता और पत्नीके दुःखकी तो कल्पना करना ही कठिन है। बिचारे सब अपने भाग्यको कोस कर रह गये

उधर चारुदत्त भी तख्तेके सहारे समुद्रके किनारे आ लगे और मामाके न मिलनेसे बहुत दुःखी हुए। फिर भी धैर्य धारण करके वह आगे बढ़े और उदंवरावती नगरमें पहुंचे। वहां मालूम हुआ कि सिद्धार्थ भी इसी प्रकार बचकर अपने नगरको गया है। यह जानकर चारुदत्तको बहुत हर्ष हुआ और अपना दुःख बहुत कुछ भुला दिया। फिर भी अकेले होनेसे बुरा मालूम होता था। किंतु चारुदत्त बहुत ही उद्यमी थे। उनने अपना साहस नहीं छोडा और अकेले ही सिंधु देशकी ओर चल दिये। कुछ दिनोंके बाद वह सिन्धु देशके संवर ग्राममें पहुंचे।

संवर ग्राम बहुत ही सुंदर एवं समृद्धियुक्त था। उसे देखकर चारुदत्तको बहुत प्रसन्नता हुई। वहांपर चारुदत्तके पिता भानुदत्त सेठकी बहुत संपत्ति थी, करीब १८ करोडका भंडार भरा था। उसका अधिकार चारुदत्तको मिल गया जिससे वह पूर्ववत् समृद्धिशाली होगये। उस अपार सम्पत्तिको पाकर चारुदत्तने प्रसन्नतापूर्वक एक विशाल जिन मंदिर बनवाया, उसपर स्वर्णकलश चढ़ाये और बहुमूल्य उपकरण बनवाकर अपनी सम्पत्तिको सफल किया। अब वह प्रतिदिन चार प्रकारका दान देते थे सज्जनों और विद्वानोंका सन्मान करते थे, दुखित–दरिद्रियोंको भी दान देते थे। जो भी उनके दरवाजेपर मांगता आता था वह कभी खाली हाथ वापिस नहीं जाता था। इस प्रकार चारुदत्तने अपनी धर्मनिष्ठा एवं दानशीलताके द्वारा खूब ख्याति प्राप्त करली

लोग चारुदत्तकी नाना भांति प्रशंसा करने लगे। कोई कहता था कि नगरमें यह एक ही दानी है, कोई कहता था कि इस जैसा धर्मात्मा दूसरा नहीं है, कोई कहता था कि गुरुओं और विद्वानोंका सन्मान करनेवाला यह एक ही पुरुष है और कोइ कहता था कि वास्तवमें चारुदत्तको जैसा धन मिला है वैसा ही वह खर्च करना भी जानता है। इसप्रकार चारों ओरसे चारुदत्तकी ख्याति होने लगी। वास्तवमें थे भी वे इसके योग्य। वह गुणवान थे, दयावान थे, दानी थे, धर्मात्मा थे, तथा क्षमा और सत्यके धारी थे। वे निरंतर दीन दुखियोंकी रक्षामें तत्पर रहते थे और आनन्दपूर्वक अपना काल यापन करते थे।

दानकी परीक्षा ।

नाम वीर प्रनतेश, दान परीक्षाके निमित ।
करि मानुषको भेष, आयो सो ता नगरमें ॥

चारुदत्तके दानकी चर्चा उसी नगरमें नहीं किन्तु देश विदेश तक फैल गई थी। कोई भी मनुष्य जो कुछ भी मांगता था वह उसे मिलता था। इस प्रशंसाको सुनकर एक यक्षके मनमें चारुदत्तकी परीक्षा करनेकी सूझी। उसका नाम प्रणतेश था। वह मनुष्यका रूप धारण करके उस नगरमें गया। उसने अपना रूप महा दुखी दरिद्री रंकके समान और शरीर बहुत ही रोगी एवं

करुणाजनक बनाया था। वह अपना ऐसा दयनीय वेष बनाकर नगरमें भीख मांगनेको निकला।

चारुदत्त एक दिन जिनेन्द्र भगवानका नाम स्मरण करते हुये जिनमंदिरको जारहे थे, उसी समय वह यक्ष चारुदत्तके सामने हाथ जोड़कर आखड़ा हुआ। चारुदत्तने उसे दुखी देखकर पूछा कि तू इतना दुखी क्यों है? क्या तुझे द्रव्यकी आवश्यक्ता है या शारीरिक पीड़ा है अथवा अन्य कोई व्यथा है? तब यक्ष बोला कि सेठजी! मुझे पेटमें भयंकर शूलकी पीडा है। मैं सकड़ों उपाय करके थक गया किन्तु यह पीडा नहीं मिटती दैवयोगसे एक चतुर वैद्य मिला और उसने मेरे रोगको पहिचान लिया। किन्तु इसका निदान इतना कठिन है कि न तो वह हो सकेगा और न मैं जी सकूँगा।

वैद्यने कहा है कि यह रोग भयंकर है। इसकी मात्र एक यही दवा है कि किसी मनुष्यकी पसुली लाकर उससे सेंका जाय। बस, इसीसे पेटकी पीड़ा मिट सकेगी। किन्तु मैं तो एक दीन हीन रंक अनाथ भिखारी हूं। मुझे मनुष्यकी पसुली कहांसे मिल सकती है? मैं दिन रात इसी चिन्तामें जला करता हूं। किन्तु दैवयोगसे आपका नाम और मुंह मांगा दान सुनकर मेरे हर्षका पार नहीं रहा। आपकी दान-शीलताकी महिमा सुनकर ही मैं यहां दौड़ा आया हूं। आप तो महा दानेश्वर हैं। यदि मुझे अपनी पसुली देसकें तो मेरी पीड़ा मिट जाय। पसुलीके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिये।

यह सुनकर चारुदत्तने उस भिखारीको आश्वासन देते

हुये कहा कि तू चिन्ता मत कर; मैं तुझे पसुली दूंगा और तेरा रोग मिट जायगा इतना कहकर चारुदत्तने उसी समय छुरी मंगाई और अपनी पसुली (कलेजा) काटकर उसे देदी। *
यक्ष यह देखकर आश्चर्यचकित होगया और अपना मनुष्यरूप मिटाकर देवके रूपमें प्रगट हुआ। तथा चारुदत्तकी स्तुति करने लगा। वह स्तुति करता हुआ बोला कि हे दानेश्वर! आप धन्य हो, आपके माता पिताको भी धन्य है, जिनसे आपने जन्म लिया है। वह दिन तिथि और वार भी धन्य है जिसमें आपका जन्म हुआ है आपके इस शुभ नामको भी धन्य है सचमुचमें दानी हो तो ऐसा हो! वास्तवमें इस जगमें आप जैसा त्यागी कोई दूसरा नहीं है।

इसप्रकार स्तुति करके वह यक्ष चारुदत्तके पास बैठ गया। और अपने प्रभावसे पसुलीका घाव मिटा दिया तथा शरीर ज्योंका त्यों कर दिया! चारुदत्तने अपनी सर्व सम्पत्ति दान करदी और अकेले होकर इधर उधर भ्रमण करने लगे। ×

---

* हरिवंशपुराण, आराधन कथाकोश या अन्यत्र इस प्रकारका कोई वर्णन नहीं है। और न जैन सिद्धांत ही इस प्रकार कलेजा काटकर (मांस) देनेको दान मानता है। अन्य सभी ग्रन्थोंमें कुयेसे निकलनेपर तुरत सन्यासीके जालमें फँसनेकी बात ही है जो आगे बताई जायगी। यक्षकी यह कथा मात्र इसी पुस्तकमें है। × देवके प्रगट होजानेपर भी अपनी करोड़ोंकी सम्पत्ति दानकरके स्वयं निर्धन होकर अकेले धन कमानेके लिये इधर उधर भ्रमण करनेका कोई संगत कारण प्रतीत नहीं होता।

सन्यासीके जालमें।

प्रियवादीति विश्वस्य बकवृत्तेर्दुरात्मनः ।
अधोऽधोऽनुचरो मुग्धः पततीति किमद्भुतम् ॥
—हरिवंशपुराण ।

घूमते घूमते चारुदत्त राजगृही नगरीमें पहुंचे । और एक स्थानपर ठहर गये । दैवयोगसे वहां एक दंडी-सन्यासी मिला । उसका नाम विष्णुदत्त था । वह ऊपरसे देखनेमें तो बड़ा सीधा सादा, भव्य और साधुपुरुष मालूम होता था किन्तु उसका अन्तरंग बहुत काला था । चारुदत्त उसकी मीठी बातोंमें आगये और अपनी सुख दुखकी सब बातें उसे सुना दीं । सब हाल सुनकर सन्यासी बोला कि बेटा ! तुम धनके लिये इतने चिन्तित क्यों हो ? मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा ! एक जंगलमें रसका कुआ है । उसके रसायनसे मनवांछित द्रव्य प्राप्त होजाता है ।

यह सुनकर चारुदत्तके हर्षका ठिकाना नहीं रहा और वह बोले कि महात्मन् ! चलिये, जल्दी चलिये और मुझे वह रसकूप बताइये । अथवा आप थोड़ासा रस यहीं ला दीजिये । आपकी जैसी इच्छा या आज्ञा हो सो मैं करनेको तैयार हूं । सच है, कौन धन-लंपटी लोग दुर्जनोंके द्वारा नहीं ठगाये जाते ? *

---

* चारुदत्तोऽवदत्तात कुरु त्वेवं मम ध्रुवम् ।
धनाशालम्पटा लोके दुर्जनैः के न वंचिताः ॥
—आराधना कथाकोश ।

सन्यासी भी चारुदत्तको अपने जालमें फँसा हुआ जानकर जंगलमें लेगया। वह निर्जन वन बहुत ही भयङ्कर था। थोड़ी दूर जाकर एक कुवा दिखाई दिया। वे दोनों उसके बांधपर बैठ गये। विष्णुदत्तने चारुदत्तसे कहा कि तुम्हें इस कुयेमें उतरना होगा तब ही रस मिलेगा

यों कहकर उसने एक चौकीके चारों कोनोंमें रस्सी बांधी और उसपर चारुदत्तको बिठाकर हाथमें एक तूंबी देदी और कहा कि बेटा! जब तू नीचे पहुंच जाय तब इस तूंबीमें रस भर लेना और चौकीपर तूंबी रख देना। फिर रस्सीको हिला देना, जिससे मैं रस्सीद्वारा चौकी ऊपर खींच लूंगा। उसके बाद मैं फिर चौकी नीचे डालूँगा तब तू उसपर बैठ जाना। और मैं डोरी खींचकर तुझे निकाल लूँगा।

यह सुनकर चारुदत्तने कहा कि साधो! जो आप कह रहे हैं वह बिलकुल ठीक है। मैं इसी प्रकार करूँगा। चारुदत्तने अपने भोले स्वभावके कारण कपटी साधुके कपटको नहीं समझा और वह चौकीपर बैठ गये। सन्यासीने चौकी कुयेमें डाली और चारुदत्तको नीचे उतार दिया। कुयेमें एक खोह थी. उसीके आधारसे चारुदत्त बैठ गये और तूंबीमें रस भरने लगे। वहीं बहुत दिनसे एक आदमी पड़ा हुआ था। उसने चारुदत्तको रोका।* उस आदमीको देखकर

* हरिवंशपुराणमें लिखा है कि उस आदमीने यह कहकर चारुदत्तको रोका था कि यदि तुम जीना चाहते हो तो इस भयंकर रसका

चारुदत्तको भय मालूम हुआ। किन्तु उसने साहस और विश्वास दिलाते हुये कहा कि भाई! तुम डरो मत। मैं जानता हूं कि तुम दुष्ट विष्णुदत्त साधुके जालमें फँस गये हो और उसी स्वार्थीने तुम्हें कुयेमें उतारा है।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि महाशय! आप कौन हैं? कहांके रहनेवाले हैं? यहां आप कैसे आये? सब बातें सत्य सत्य कहिये। तब वह आदमी बोला कि भाई! मेरी कथा सुनो। इन्द्रपुरीके समान शोभायुक्त उज्जैनी नगरी है। वहींका रहनेवाला मैं एक वणिक पुत्र हूं। हमारी आंथिक स्थिति बहुत खराब थी, इसलिये इस निर्धनतामें जैसे तैसे अपने दिन काटते थे।* एक दिन दैवयोगसे उस दुष्ट तपस्वीसे भेट हुई। उसने मुझे मीठी मीठी बातें सुनाकर अपने

स्पर्श मत करो। इसके स्पर्श करनेसे क्षयकी भांति शरीर सूखने लगता है और अन्तमें वह प्राण लेकर ही छोड़ता है। यथा:—

मा स्प्राक्षीस्त्वं रसं भद्र रौद्रं यदि जिजीविषुः।
स्पृशेत चेन्न जीवंतं मुंचति क्षयरोगवत् ॥
—हरिवंशपुराण।

* आराधना कथाकोशमें इस प्रकार लिखा है कि "मैं उज्जैनीका रहनेवाला हूं। मेरा नाम धनदत्त है। मैं सिंहलद्वीप गया था, लौटते समय जहाज फट गया। धन-जनकी भारी हानि हुई। जैसे तैसे किनारे लगा कि-इस सन्यासीसे भेट होगई। और इसके जालमें फँस गया। इसी प्रकार हरिवंशपुराणमें भी है। किन्तु चारुदत्त चरित्रमें इसप्रकारका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। और न उस आदमीका नाम (धनदत्त) ही बताया है।

जालमें फँसा लिया। मैंने लोभके कारण उसकी दुष्टताको नहीं समझ पाया, और उसे अपना हितैषी माना। वह मुझे इस जंगलमें ले आया और एक तूंबी देकर इस कुयेमें उतार दिया। मैंने रससे तूंवी भरकर रस्सीसे बंधी हुई चौकीपर रख दी। और उसने उसे खींचली। फिर जब दूसरीवार रस्सी डाली तब मैं उससे बंधी हुई चौकीपर बैठ गया। उसने आधी दूर तक खींचकर बीचमें ही रस्सी काट डाली, जिससे मैं बुरी तरह यहां आगिरा और चोट लगनेसे पड़ा पड़ा कराहता रहा। वह पापी सन्यासी तो रस लेकर चला गया किन्तु मैं यहां इस क्षयकारी रसके कारण अर्धदग्ध होकर मर रहा हूं। भाई! अब मैं अधिक समय तक नहीं जी सकता।

चारुदत्तने यह रोमांचकारी बातें सुनकर निश्चय किया कि मैं भी इसी प्रकार उस पापीके कपटजालमें फँस गया हूं। अब मैं यहांसे कैसे निकलूंगा? यह विचार कर चारुदत्तने उस आदमीसे कहा कि अब तुम मुझे कोई उपाय बताओ मुझे क्या करना चाहिये? तब वह मनुष्य बोला कि इस पापीके पंजेसे बचनेका एक मात्र यही उपाय है कि आप रसकी तूंबी भरकर इस चौकीपर रख दीजिये। साधू इसे खींच लेगा। और फिर जब दूसरीवार चौकी डाले तब आप स्वयं उसपर न बैठकर कुछ पत्थर रख देना। सन्यासी आपको बैठा जानकर रस्सी खींचेगा, और बीचमेंसे ही काट डालेगा। बस, आपके प्राण बच जांयगे। ऊपरसे पत्थर गिरेंगे इस-लिये उनसे बचनेके लिये एक बगलमें बैठ जाना चाहिये।

चारुदत्तको यह सलाह बहुत ही योग्य मालूम हुई और उनने वैसा ही किया। इस भयसे कि यदि रसकी तूंबी भरकर नहीं देंगे तो वह सन्यासी ऊपरसे पत्थर आदि मारकर हमें सतायेगा इसलिये पहले तूंबी भरकर चौकीपर रख दी और रस्सी तान दी। सन्यासीने अपना मतलब सिद्ध होता जानकर रस्सा खींचली। और रसकी तूंबी लेकर दूसरीबार चौकी कुयेमें डाली। तब चारुदत्तने उसपर स्वयं न बैठकर कुछ पत्थर रख दिये और रस्सा हिलाकर स्वयं एक तरफ खड़े होगये। सन्यासीने रस्सी खींची और आधी दूर ऊपर आनेपर उसे बीचसे ही काट डाली। इसलिये चौकी पत्थरों सहित कुएमें आ गिरी और सन्यासी अपना मतलब सिद्ध हुआ जानकर तूंबी ले अपने स्थानपर चलागया।

उधर आपत्तिग्रस्त चारुदत्त जिनेन्द्र भगवानका नाम स्मरण करते हुए विचारने लगे कि कर्म बहुत बलवान है। उसका जब जैसा उदय आता है तब जीवको वह सहन करना ही पड़ता है। इसलिये अब दुःख, शोक और चिन्ता करना तो व्यर्थ है। हाँ, कुछ उपाय अवश्य सोचना चाहिये। यों विचार कर चारुदत्तने उस मनुष्य (धनदत्त) से कहा कि क्या इस कुएँसे निकलनेका कोई उपाय है?* तब धनदत्तने

*आराधना कथाकोशमें लिखा है कि निकलनेका उपाय पूछनेके पूर्व चारुदत्तने धनदत्तको पंच नमस्कार मंत्र देकर और सन्यास धारण कराया था। फिर उपाय पूछा था, किन्तु यह संगत प्रतीत नहीं होता।

कहा कि एक उपाय मेरे ध्यानमें है अवश्य, किंतु वह कठिन एवं भयावह है। यहां एक गोह प्रतिदिन दुपहरीमें× रस पीनेके लिये आती है। आप उसकी पूंछ पकड़ लेना, वह आपको खींचकर ऊपर तक ले जायगी। इसके सिवाय दूसरा कोई भी उपाय नहीं है।

चारुदत्तने पूछा कि आप जिस प्रकारसे मुझे निकलनेका उपाय बता रहे हैं उसी प्रकार आप क्यों नहीं निकले? और अभीतक यहाँ पड़ेर क्यों दुख उठा रहे हो? तब धनदत्तने कहा कि मुझे भयंकर चोट लगी है इसलिये गोहकी पूंछ पकड़कर निकलनेकी मुझमें शक्ति नहीं है। यह सुनकर चारुदत्त कुछ विचारमें पड़ गये और सोचने लगे कि गोह कब आती है और मैं कब निकल पाता हूं।

इतनेमें धनदत्त बोला कि भाई! यह निश्चय समझो कि अब थोड़ी ही देरमें मेरे प्राण निकलनेवाले हैं। मेरा चित्त घबड़ा रहा है। अब मैं क्या करूं? क्या मेरी मौत इसी प्रकार होगी? होनहार बलवान है। लोभके कारण मैं यहां आकर फँसा हूं। उसीका यह फल भोग रहा हूं।

यह सुनकर चारुदत्तने उसे ढाढस बंधाया और समझाया कि हे भाई! अब तुम घबराओ नहीं, जो होना है सो होकर ही रहेगा। व्यर्थ ही मोह और विलाप करनेसे क्या

×आराधना कथाकोशमें लिखा है कि गोह सवेरे आती है। यथा-"अद्य पीत्वा रसं गोधा गता, प्रातः समेष्यति।"

लाभ है । अब तुम संसारसे मोहका त्याग करके धर्ममें अपना चित्त स्थिर करो। अन्तसमयमें धर्म ही इस जीवका सहायक है । तथा बाह्य संकल्प विकल्प दुर्गतिके देनेवाले हैं । इसलिये सब मोहजालको त्यागकर पंच नमस्कार मंत्रका उच्चारण करो। उसीका विचार करो और उसीका मनन करो इस णमोकार मंत्रमें (णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं) पांच पद, पैंतीस अक्षर और अट्ठावन मात्रायें हैं। तुम इनका ही ध्यान करो। इस-प्रकार मंत्र और उसकी महिमा आदि सुनकर धनदत्तके मनमें प्रसन्नता हुई और वह श्रद्धापूर्वक णमोकार मंत्र जपने लगा।

इसके बाद चारुदत्तने उसका मरण निकट जानकर स्वर्ग मोक्षदायी जैनधर्म तथा सन्यास धारण कराया और जैनधर्मका उपदेश दिया । इस धर्म निमित्तको पाकर धनदत्तके परिणाम बहुत शुद्ध होगये और वह णमोकार मंत्रका जाप करता हुआ शरीर त्याग प्रथम स्वर्गमें देव हुआ ।* सच है, इस णमोकार मंत्रके प्रभावसे क्या नहीं होसकता ? यह पाप पंकको धोकर स्वर्ग और मोक्षपदका देनेवाला है । इसलिये भव्य जीवोंको इसे सदा जपना चाहिये। इस मंत्रके प्रभावसे ही जीव सर्वार्थ-सिद्धि जाता है और इसीके प्रभावसे समस्त ऋद्धिसिद्धि प्राप्त होती हैं । इस मंत्रके प्रभावसे देवगण सेवा करते हैं। और इससे संसारके दुखोंका नाश होजाता है। इसलिये

---

*हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोशमें धनदत्तके मरणका और प्रथम स्वर्गमें जाने आदिका कोई उल्लेख नहीं है ।

शुभ गतिका करनेवाला और दुर्गतिका नाश करनेवाला पंचनमस्कार मंत्र सदा ध्याने योग्य है। यही पंचनमस्कार मंत्र जगतमें सारभूत है।

उधर चारुदत्त कुएसे निकलनेकी चिन्तामें बैठे हुए थे कि इतनेमें गोह आई और वह रस पीकर वापिस जाने लगी। चारुदत्तने तुरत ही उसकी पूंछ पकड़ ली और उसके साथ ऊपरको खिंचते हुए चले गए। किन्तु लगभग एक हाथ निकलना ही बाकी रहा था कि वह गोह पासके एक बड़े बिलमें घुस गई। चारुदत्त भी उसीके साथ भीतर चले गये। किन्तु जब वह गोह एक छोटे छिद्रसे ऊपर जाने लगी तब चारुदत्त घबराये और उनने विचार किया कि इस छोटे छिद्रमेंसे गोह तो ऊपर निकल जायगी मगर मैं इसमेंसे कैसे निकल सकूंगा। मेरे तो इसमें प्राण ही निकल जायंगे। यह विचार कर उनने उस गोहकी पूंछ छोड़ दी और वहीं रह गये। तथा गोह ऊपर निकल गई।
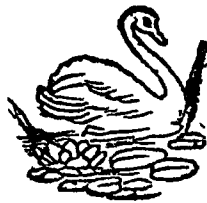
आपत्तियोंपर आपत्तियाँ ।

एक्कस्स जाव न अंतं जामि दुक्खस्स पावकम्मे हं ।
तावच्चिय गरुययरं विइयंतु निरूवियं विहिणा ॥

—प्राकृत सुभाषितसंग्रहः ।

जब चारुदत्तको बाहर निकलनेका मार्ग नहीं दिखा तब वे जिनेन्द्र भगवानका स्मरण करते हुए बारह भावनाओंका चिन्तवन करने लगे। दैवयोगसे उसी समय बकरियोंका समूह उस तरफ वनमें चरनेके लिये आया और उस कुएँके पाससे निकल गया। किन्तु एक बकरीका पैर उस बिलमें घुस गया जिसके नीचे चारुदत्त बैठे हुए थे। चारुदत्तने मौका देखकर उस बकरीका पैर तुरत ही पकड़ लिया, जिससे वह बकरी बड़े जोरसे मिमयाने लगी। ग्वाला बकरीकी आवाज सुनकर उस तरफ आया। और बकरीका पैर निकालनेके लिये उस बिलको खोदने लगा। इतनेमें भीतरसे चारुदत्त बोले कि तनिक धीरे धीरे खोदना !

बिलमेंसे मनुष्यकी आवाज सुनकर ग्वाला आश्चर्यचकित होगया और बोला कि इस बिलमें कौन बोल रहा है ? तू कोई मनुष्य है, देव है, या भूतप्रेत है ? तब चारुदत्तने कहा कि भाई ! मैं मनुष्य हूं, दया करके मुझे यहांसे शीघ्र ही निकालो। ग्वालाको वास्तवमें मनुष्य जानकर कुछ शान्ति

हुई और उसने धीरे धीरे बिल खोदकर चारुदत्तको बाहर निकाल लिया ।*

चारुदत्त बिलमेंसे निकलकर आगेको रवाना होगए । मार्गमें उन्हें एक महाभयंकर जंगल मिला । उसे पार करते हुए चारुदत्त मनमें जिनेन्द्र भगवानका नाम स्मरण करते हुये चले जारहे थे । कहीं भयानक सुअर, सियाल, चीता और शेर फिर रहे थे तो कहीं बन्दर, रींछ, भैंसा और लंगूर फिरते थे । कहीं मत्त हाथी झूमते फिरते थे तो कहीं शार्दूल सिंह, अजगर और ऐसे ही भयंकर प्राणी दिखाई देते थे फिर भी चारुदत्त साहस करके आगे बढ़ते ही चले गये ।

आगे चलकर उन्हें एक भयानक आरण भैंसा मिला । वह कालके समान विकराल मालूम होता था । चारुदत्तको देखकर वह मारनेको दौड़ा । चारुदत्त भी उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर भागे । बहुत दूरतक भैंसाने चारुदत्तका

* हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोश आदिमें यह वर्णन नहीं है । उनमें मात्र इतना ही कथन है कि चारुदत्त गोहकी पूंछ पकड़कर ऊपर निकल आये और मुर्छित होगये । थोड़ी देरबाद वहांसे एक बनकी ओर चल दिये । उसमें ऐसा कथन नहीं है कि गोह एक बिलमें घुस गई और उसीके साथ चारुदत्त भी चले गये । और यह कुछ संगत भी नहीं है । कारण कि जिस बिलमेंसे उतनी बड़ी गोह निकल गई उसमें बकरीका पैर फँस गया और उसे निकालनेके लिये ग्वालाको जमीन खोदना पड़ी, यह कैसे संभव है ? कारण कि गोहसे बकरीका पैर पतला होता है । इस चरित्रमें यह कथन किस आधारसे किया गया है सो मालूम नहीं होता ।

पीछा नहीं छोड़ा। आगे आगे चारुदत्त अपने प्राण लिये भाग रहे थे, पीछे पीछे वह भयंकर भैंसा दौड रहा था। भागते भागते चारुदत्तको पासमें ही पर्वतकी एक गुफा दिखाई दी और वे उसमें घुस गए। किन्तु दैव तो वहां भी साथ ही था।

गुफाके दरवाजेपर ही एक काल समान विकराल भुजंग सोरहा था। उसकी परवाह न करके मात्र भैंसेसे बचनेके लिये चारुदत्त उस सर्पके फणपर पैर रखकर गुफाके भीतर जा कूदे। चारुदत्त तो उस कन्दरामें घुस गये किन्तु पैर पड़ जानेसे वह सांप जाग उठा और क्रोधमें ऐसे जलने लगा जैसे अग्निमें घी होमा गया हो! इतनेमें उसे सामने ही भैंसा दिखाई दिया। उसे देखकर अजगर-सांपने समझा कि इसीने मेरे सिरपर पैर रखा है। बस, फिर क्या था? अजगरके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा, और उस भैंसेके साथ युद्ध करने लगा।

उधर चारुदत्त गुफाके भीतरसे अजगर और भैंसाका युद्ध देखने लगे। भैंसाकी भयंकर आवाज और अजगरकी फुंकार हृदयको हिला देती थी। बड़ी देरतक वे दोनों लड़ते रहे, मगर न कोई हारा और न कोई जीता। उन दोनोंका युद्ध जमा हुआ देख मौका पाकर चारुदत्त वहांसे भाग खड़े हुये।*

जब वह जंगलमें बहुत दूर पहुंच गये तब उन्हें कुछ शांति मिली। लेकिन निर्जन वनकी भयानकता अच्छे अच्छे

---

* आराधना कथाकोशमें यह वर्णन नहीं है। किन्तु हरिवंश-पुराणमें इसी प्रकार है।

वीरोंका हृदय दहला देनेवाली थी। फिर भी चारुदत्त णमो-कार मंत्रका उच्चारण करते हुये साहसपूर्वक आगे बढ़ते गये। दैवयोगसे थोड़ी दूर जानेपर दो मस्त भैंसा मिले और वे चारुदत्तको मारनेके लिये दौड़े चारुदत्त भी अपने प्राण बचाकर वहांसे भागे और भागते भागते मौका देखकर एक वृक्षपर चढ़ गये। वह वृक्ष बहुत बड़ा और ऊंचा था. इस-लिये चारुदत्तकी रक्षा होगई। वह भैंसा वृक्षके नीचे आये और झांक झांक कर वहांसे चले गये।× उन्हें गया हुआ देखकर चारुदत्त वृक्षके नीचे उतरे और आगेको बढ़े। चलते चलते मार्गमें एक नदी मिली। उसके किनारे पर चारु-दत्त विश्राम करनेके लिये ठहर गये।

धन प्राप्तिका प्रयत्न।

जस्सत्थो तस्स सुहं, जस्सत्थो पण्डिओ य सो लोए।
जस्सत्थो सो गुरुओ, अत्थविहूणो य लहुओ य॥
—प्राकृत सुभाषितसंग्रहः।

उधर रुद्रदत्त चारुदत्तको ढूंढनेके लिये देशदेशान्त-रोंमें फिर रहे थे। साथमें चारुदत्तके पांच मित्र हरिसिख, गोमुख, बाराहक, परतप और मरुभूत भी थे। वे सब घूमते हुए उसी नदीके किनारे आगये जहां चारुदत्त विश्राम कर रहे थे। उन्हें देखकर सबके हर्षका

× यह कथन हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोशमें नहीं है।

पार नहीं रहा ।* चारुदत्त भी बड़े प्रेमके साथ सबसे मिले। सबकी आंखें आनन्दके आंसुओंसे भर आईं! परस्पर कुशल समाचार पूछे । चारुदत्तने अपनी सब कथा सुनाई । और घरके कुशल समाचार पूछे । इस प्रकार क्षेमकुशलकी बातोंके बाद सबने उसी नदीमें स्नान किया और शान्तिपूर्वक भोजनपान किया उसके बाद सातों वीर वहांसे निकटवर्ती एक नगरकी तरफ* चल दिये। उस नगरका नाम 'श्रीपुर' था । वह नगर बहुत समृद्धि और शोभायुक्त था। वहां एक धनसम्पन्न प्रियदत्त नामका सेठ रहता था । वह भानुदत्तका मित्र था । वे सब उसीके यहां गये और अपना सारा हाल उसे सुनाया । प्रियदत्तने सहानुभूति दिखाते हुये बहुत ही प्रेम प्रदर्शित किया और सबका आदर सन्मान करके भोजन कराया । तथा उनको व्यापारके लिये कुछ द्रव्य भी दिया ।+

वे सब द्रव्य लेकर बाजारमें गये और वहांपर व्यापारके लिये कांचकी चूड़ियां खरीदीं । फिर उनने चूड़ियोंकी गठरी बांधकर सिरपर रखीं और उन्हें बेचनेके लिये गांधारदेशमें गये वहांपर चूड़ियां बेचकर कुछ द्रव्य एकत्रित किया ।

---

*हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोशमें मात्र रुद्रदत्तसे मिलनेकी ही बात है । साथमें पांच मित्रके आनेका उल्लेख नहीं है ।

+ यह उल्लेख हरिवंशपुराण या आराधना कथाकोषमें नहीं है। तथा इसके आगे भी बहुतसा वर्णन इन कथा ग्रंथोंमें नहीं है । इस चरित्रमें विस्तारसे बहुतसी बातें विशेष पाई जाती हैं । उनमें कुछ बातें असंगतसी भी हैं ।

एक दिन रुद्रदत्तको एक आदमी मिला और पूछने लगा कि आप कहांके रहनेवाले हैं? ऐसा नीचा व्यवसाय आप क्यों करते हैं? आपको तो यह शोभा नहीं देता। आप अत्यन्त रूपवान, गुणवान, कुलीन एवं सज्जन पुरुष मालूम होते हैं फिर क्या कारण है कि आप इधर उधर मारे मारे फिरते हैं और यह व्यवसाय करते है? कृपया तमाम हाल मुझसे कहिये। यदि मुझसे बन सका तो मैं आपको उचित मार्ग बताऊंगा।

उस आदमीकी बातें सुनकर रुद्रदत्तको कुछ आश्वासन मिला 'डूबतेको तिनकेका सहारा' की भांति उसे ही अपना सहायक समझकर अपनी सारी कथा आद्योपान्त कह सुनाइ। जब उस आदमीने उनकी रामकहानी सुनी तब उसे दया आगई और वह बोला, आप इस व्यापारको छोड़ दीजिये। मैं आपको धनप्राप्तिका एक उपाय बतलाता हूं।

यहांसे थोड़ी दूर एक बहुत ही ऊंचा पर्वत है। वहां पहुंचनेके लिये कोई सुगम मार्ग नहीं है, किन्तु बहुत ही सकरी (छोटी तंग) एक गली है। उस गलीमें मात्र बकरा ही चल सकता है, दूसरे प्राणी या मनुष्यका जाना कठिन है। इसलिये यदि बकरोंपर सवार होकर वहां जाया जाय तो धीरे धीरे पर्वतपर पहुंच सकते हैं। वहां पहुचनेपर फिर आगे जानेके लिये एक और उपाय करना होगा। वह यह है कि बकरेको मारकर उसकी मसक बनानी होगी। और एक एक छुरी लेकर उसमें स्वयं बैठकर उसका मुंह सीदेना

होगा। और स्थिर होकर कुछ समय उसीमें बैठना होगा।

वहांपर रत्नद्वीपसे भेरुंड पक्षी आते हैं। जब वे वहां आकर उस मसकको देखेंगे, तब उसे मांस–पिण्ड समझकर अपनी चोंचमें दबा कर उठा लेजांयगे और वहां पृथ्वीपर रख कर खानेका प्रयत्न करेंगे। उसी समय अपनी छुरीसे मसकका मुंह फाड़ना होगा। ऐसा करनेसे जब पक्षी उसमेंसे मनुष्यको निकलता हुआ देखेंगे तब वे भयभीत होकर वहांसे भाग जायेंगे। इस प्रकार रत्नद्वीपमें पहुंच कर जितनी इच्छा हो उतने रत्नादिक वहांसे ला सकेंगे।

यह सुनकर रुद्रदत्तके हर्षका पार नहीं रहा और उसने विचार किया कि रत्नद्वीपमें जानेकी बात चारुदत्तसे करना चाहिये। किंतु यदि उससे बकरा मारने आदिकी बात कही जायगी, तो वह कदापि इसके लिये तैयार नहीं होगा। इस-लिये कोई दूसरा बहाना बनाकर उसे तैयार करना चाहिये। चारुदत्त बहुत ही धार्मिक विचारका पुरुष है। इसलिये यदि उससे यह कहा जाय कि रत्नद्वीपमें बहुत सुन्दर जिन मंदिर हैं, उनके दर्शन करना चाहिये, तो वह अवश्य ही चलनेको तैयार हो जायगा।

यह विचार कर रुद्रदत्त चारुदत्तके पास गया और बोला कि भाई! यहांसे थोडी ही दूर एक पर्वतके ऊपर बहुत ही मनोहर जिन चैत्यालय है। वहांकी यात्रा जीवनको सफल करनेवाली है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो अब सब वहां चलें और दर्शन करके अपने जीवनको सार्थक बनावें।

चारुदत्तको तो कुछ खबर ही नहीं थी कि इनके मनमें क्या कपट है, इसलिये वह शीघ्र ही तैयार होगये और बोले कि काकाजी ! ऐसा सुन्दर सुयोग क्यों छोड़ना चाहिये ? चलिये, अभी ही चलकर वन्दना करें ।

चारुदत्तकी स्वीकृति और उत्कण्ठा देखकर रुद्रदत्त उसी समय सात बकरे लेआया * और उनपर सातों आदमी चढ़कर पर्वतकी ओर चल दिये । जब वे लोग तलहटी तक पहुंचे तब सब वहीं ठहर गये और पर्वतपर चढ़नेका मार्ग देखने लगे। वह मार्ग मात्र चार अंगुल ही चौड़ा था। इतना ही नहीं, किन्तु उसके दोनों ओर पातालके समान नीचाई थी और कहींपर भी ठहरने या टिक रहनेके लिये कोई सहारा तक नहीं था ।

उस भयंकर और संकुचित मार्गको देखकर चारुदत्त बोले कि आप सब लोग यहीं ठहरिये और मैं अकेला ही जाकर इस मार्गको देखे आता हूं कि यह कहांतक इसी प्रकार छोटा और भयकारी है। जबतक मैं वापिस न आजाऊं तबतक आप यहीं रहें । यह सुनकर छहों मनुष्य बोले कि नहीं, यह नहीं होसकता । आप ही यहां ठहरिये और हम जाकर मार्ग देखे आते हैं । यह काम कुछ अकेले आपका तो है ही नहीं, यह तो सबका काम है । फिर आप ही क्यों

---

* हरिवंशपुराण और कथा कोशमें मात्र दो बकरे लानेका ही कथन है। कारण कि वहां मात्र रुद्रदत्त और चारुदत्तका ही मिलाप बताया है ।

जानबूझकर आपत्तिमें फसने जाते हैं ? यदि दैवयोगसे हम गिर भी गये तो कोई बात नहीं, किन्तु आपका जीवन विशेष मूल्यवान है। आपके द्वारा अनेकोंका उपकार हुआ है और होगा। आप विशेष पुण्यशाली एवं धर्मात्मा हैं। इसलिये हम लोगोंकी अपेक्षा आपका जीना विशेष आवश्यक है।

यह सुनकर चारुदत्त बोले कि आप लोग यह क्या कह रहे हैं ? मैं तो आप सबका सेवक हूं और आप हमारे मान्य हैं, बड़े हैं, एवं आदरणीय हैं। और फिर, यदि मैं अकेला मर भी गया तो क्या बिगड़ जायगा ? किन्तु आप छह सज्जनोंका जीवन बचना चाहिये। इसलिये अब आप आगे कुछ न कहें, मैं ही अकेला जाकर मार्ग देखे आता हूं।

यों कहकर चारुदत्त बकरेपर चढ़कर उस संकुचित मार्गको देखनेके लिये चल दिये। वह मार्ग मात्र चार अंगुल चौड़ा था और दोनों ओर बहुत ही गहराई थी। इसलिये उस मार्गमें जाते हुये ऐसा भय लगता था कि यदि बकरेका पैर तनिक ही इधरसे उधर हुआ कि नीचे जा गिरेंगे और फिर एक भी हड्डी तकका पता नहीं चलेगा। फिर भी चारुदत्त साहसपूर्वक णमोकार मंत्रको जपते हुये धीरे धीरे आगे बढ़ते गये। मार्गमें उनका न तो कोई सहारा था और न किसी दूसरे मनुष्यके दर्शन तक होते थे।

बहुत दूर पहुंचनेपर एक सुन्दर स्थान दिखाई दिया। उसे देखकर चारुदत्तको बहुत प्रसन्नता हुई और विचार

किया कि अब लौट कर सबको बुला लाना चाहिये। यों विचार कर उस स्थानसे अपने बकरेको लौटाया और नीचेकी ओर चल दिये। बकरा धीरे २ नीचे उतर रहा था, इसलिये बहुत समय लग गया। उधर रुद्रदत्त आदि पर्वतकी तलहटीमें बैठे २ सोच रहे थे कि अभीतक चारुदत्त क्यों नहीं आया। उसे गये हुए बहुत देर होगई। अबतक तो लौट ही आना चाहिये था। मार्गमें उसे कहीं कोई आपत्ति तो नहीं आगई? जो हो, अब हम सबको उसी ओर चलना चाहिये। मार्गमें वह कहीं न कहीं तो मिल ही जायगा।

यह विचार करके वे सब अपने २ बकरेपर चढकर उसी संकुचित मार्गसे एकके पीछे एक होकर चल दिये। इधर यह ऊपर लोग चले जा रहे थे और उधर चारुदत्त नीचे वापिस आरहे थे। इसलिये वे बीच मार्गमें आमने सामने मिल गए। चारुदत्तको देखकर छहों मनुष्य बहुत प्रसन्न हुए, किंतु चारुदत्तको अत्यन्त खेद हुआ और वह बोले कि आप लोगोंने यह बड़ी मूर्खता की है। मैंने तो कहा था कि जबतक मैं वापिस न आजाऊं, तबतक आप लोग वहीं ठहरें। फिर आप सब मेरे आनेके पूर्व ही वहांसे क्यों चल दिये? अब हम सब यहां बुरी तरह फंस गए हैं। यह मार्ग बहुत ही तंग है। इसलिये न तो मैं पीछेकी ओर फिर सकता हूं और न आप लोग ही फिर सकते हैं। तथा एक दूसरेकी बगलमेंसे निकल जांय यह तो एक प्रकारसे असम्भव ही है।

यदि मैं फिरता हूं तो मेरा मरण होगा और यदि आप लोग फिरेंगे तो आप सब नीचे जागिरेंगे। अब आप ही बताइये कि हम सबको क्या करना चाहिये ?

यह सुनकर वे छहों मित्र बोले कि इसमें हमारा क्या अपराध है ? आपने ही तो वापिस आनेमें इतना विलम्ब किया। इसलिये हम सब दुखी एवं चिन्तित होउठे और आपको देखनेके लिये चल दिये। उसका यह परिणाम आया है कि हम सब आपत्तिमें फँस गये हैं। अस्तु, जो होना था सो होगया। अब आप हमारी एक बात स्वीकार करिये। वह यह है कि हम सब तो भाग्यहीन हैं और आप हैं परोपकारी, धर्मात्मा एवं भाग्यशाली महापुरुष। इसलिये यदि हम लोगोंकी मृत्यु होजाय तो कोई चिन्ता नहीं, किन्तु आप चिरजीवी रहें, यही हमारी भावना है। इसलिये आप तो अब नहीं लौटिये लेकिन हम ही लौटते हैं। इसप्रकार लौटते हुये मरण या अन्य कोई आपत्ति आयगी तो उसे सहनेके लिये हम तैयार हैं।

तब चारुदत्तने कहा कि मित्रो ! आप यह क्या कह रहे हैं ? तनिक विचार तो करिये, कि एकका मरना अच्छा है या छहका ? मेरे अकेलेके लिये आप छहका मरण हो यह मुझे या किसीको भी इष्ट नहीं होसकता। इसलिये मुझे ही लौटने दीजिये। यदि मेरा मरण होजाय तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है। किन्तु आप सबकी जीवन-रक्षा

होनी चाहिये । अब पश्चात्ताप या सोच विचार करनेसे कोई लाभ नहीं है । भवितव्य बड़ा बलवान होता है । इसलिये जो होना था सो होगया और जो होना है वह होकर ही रहेगा। इसमें हम या आप क्या कर सकते हैं ?

समस्त संसार दैवानुसार चक्कर लगा रहा है । मनुष्य जैसा जो शुभ या अशुभ कर्म उपार्जन करता है उसी प्रकार उसे उसका फल भोगना पड़ता है । कर्मके विना न तो कोई कुछ देसकता है और न लेसकता है । जिस जीवका जैसा कर्मोदय होता है उसे वैसे ही सहायक निमित्त भी मिलते हैं । यद्यपि सुख दुख देनेवाला कोई वास्तवमें मालूम नहीं पड़ता, फिर भी इतना तो निश्चित है कि यह सब विधिका ही विधान है । यह जीव चारों गतियोंमें भ्रमण करता है, फिर भी पुण्य और पाप तो उसके साथ ही लगा रहता है । भवितव्यको कोई भी नहीं मिटा सकता । कर्मोदयके अनुसार इस जीवको मन, वचन, कायसे सुख दुख भोगना पड़ते हैं ।

इसप्रकार अनेक तरहसे समझाकर चारुदत्तने उन सबको धैर्य बंधाया और णमोकार मंत्रका जप करके धीरेसे अपने एक पैरकी अंगुली मार्गमें टिकाकर और संपूर्ण शक्तिसे अपने शरीरको साधकर अपने बकरेको बड़ी ही सावधानीसे फिरा लिया और ऊपरकी ओर चल दिये । उनके पीछे२

वे छहों मित्र भी हो लिये। थोड़ी देर बाद वे सब पहाड़के ऊपर पहुंच गये और आनन्दपूर्वक वहां ठहर गये। *

बकरोंका बध

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं,
वृत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा,
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम्॥
—मृच्छकटिकम्।

कुछ समयके बाद चारुदत्तने रुद्रदत्तसे कहा कि जिन-मंदिर कहां है? चलिये, उसका पता लगाकर दर्शन करने चलें। तब रुद्रदत्तने विचार किया कि यदि चारुदत्तसे सत्य बात कह दी जायगी कि इन बकरोंको मारकर अन्य द्वीपमें जाना है तो वह बकरेको नहीं मारने देगा। कारण कि वह धर्मात्मा है। वह धनकी इच्छासे बकरेका वध करना कभी भी पसन्द नहीं करेगा। इतना ही नहीं किन्तु यदि उसे बकरेके वधकी बात भी मालूम

* पृष्ठ७८से यहां तकका वर्णन हरिवंशपुराण या आराधना-कथाकोशमें नहीं है। वहां तो मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्त इन दोका ही जिकर है। रुद्रदत्तने दोनों बकरोंको मारकर मसकें बनाई थीं। और दोनों बैठकर पक्षियोंद्वारा रत्नद्वीप गये थे। मगर रुद्रदत्तको पक्षीने बीचमें ही कहीं पटक दिया और चारुदत्तको रत्नद्वीपमें लेगये। मार्गमें लौटने आदिका कोई कथन नहीं है।

होजायगी तो वह बहुत दुखी होगा । इसलिये कोई दूसरा उपाय सोचना चाहिये ।

यों विचारकर रुद्रदत्तने जिनमंदिरकी बातको टाल दिया और कहा कि कुमार! जिनमन्दिर यहांसे कुछ दूरीपर है । वहांतक जानेकी अभी मुझमें शक्ति नहीं है । संकुचित मार्गसे आनेके कारण मेरा शरीर बहुत शिथिल होगया है । इसलिये थोड़ी देर आराम कर लेना चाहिये । कुछ निद्रा लेनेके बाद हम सब जिनमन्दिरके दर्शन करने चलेंगे । चारुदत्तने कपटजालको न पहिचानकर काकाकी बात स्वीकार करली और सातों मित्र एक वृक्षके नीचे सोगये ।*

चारुदत्तके मनमें कोई कपट नहीं था इसलिये वह तो वास्तवमें ही सोगये थे, किन्तु बाकीके छहों मनुष्य कपटी एवं पापात्मा थे, इसलिये सोनेका बहाना बनाकर पड़े रहे । जब उन्हें मालूम हुआ कि चारुदत्त सोगया है तब वे सब उठे और अपने अपने बकरोंको मार डाला । उन दुष्टोंको अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये या द्रव्य लोभके सामने बकरोंकी हत्या करते समय तनिक भी दया नहीं आई ।

वास्तवमें जो मनुष्य लोभसे अन्धा होता है वह पाप

---

* हरिवंशपुराणमें ऐसी कोई बात नहीं है । उसमें तो लिखा है कि रुद्रदत्तने चारुदत्तसे बकरा मारनेकी बात स्पष्ट कही थी और चारुदत्तके मना करनेपर भी जबरदस्ती दोनों बकरे मार डाले थे । जिनमन्दिरके दर्शन करनेका प्रलोभन देनेकी कोई बात नहीं है ।

पुण्यका विचार ही नहीं करता। लोभांधके हृदयमें दया लेश मात्र भी नहीं होती और वह सदा कुकर्म करनेमें तत्पर रहता है। लोभीके न तो कोई क्रिया कर्मका विचार होता है और न उसके बुद्धि विवेक ही रहता है। लोभी मनुष्यको धर्मध्यानका तो विचार ही नहीं आता। और न उसे सत्य संयमादिका ही ज्ञान रहता है। इसी प्रकार लोभांध होकर ही रुद्रदत्त आदिने उन विचारे निर्दोष बकरोंका बध करते हुये तनिक भी दया नहीं खाई।

उस दुष्टात्मा रुद्रदत्तने ६ बकरोंका बध होनेके बाद चारुदत्तके बकरेको मारनेका विचार किया। और हाथमें छुरी लेकर उसके गलेपर चलादी। वह पापी धीरे धीरे छुरी चला रहा था और बकरा जोर जोरसे मिमया रहा था। जब आधा गला कट चुका तब उस बकरेकी आवाज सुनकर चारुदत्तकी नींद खुल गई और देखा तो ६ बकरे मरे पड़े हैं तथा सातवां अधमरा होचुका है। उस समय चारुदत्तके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। उनने तुरत ही रुद्रदत्तके हाथसे छुरी छीनकर फेंकदी। और उसकी इस दुष्टताकी निन्दा करने लगे।

उधर चारुदत्तके बकरेके प्राण निकल रहे थे। वह विचारा कातर दृष्टिसे चारुदत्तकी ओर टगर टगर देख रहा था। उसे देखकर चारुदत्तकी आंखोंमें आंसू आगये और हृदय भर आया, मगर उसे बचानेका उनके पास कोई उपाय नहीं था। फिर भी उसकी शान्तिके साथ मृत्यु हो और उसे

सुगति प्राप्त हो इसलिये उसे पंच नमस्कार मंत्र सुनाया और सन्यास धारण कराया। वास्तवमें जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवानके उपदेशका रहस्य समझनेवाले हैं उनका जीवन परोपकारके लिये ही होता है।* चारुदत्त द्वारा प्रदत्त णमोकार मंत्रके प्रभावसे वह बकरा मरकर पहले स्वर्गमें देव हुआ।

वास्तवमें इस महामंत्रका बहुत बड़ा प्रभाव है। इसीके द्वारा स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है और इसीसे संसार भ्रमण छूट जाता है। इस णमोकार महामंत्रका जाप करनेसे दुख द्वंद दूर होजाते हैं और इसीके द्वारा इच्छित सुखोंकी प्राप्ति होती है तथा इसीके प्रभावसे समस्त पापोंका नाश होता है। संसारसागरसे पार लगानेवाला एक यही महायान है। तथा कर्म काठको जलाकर भस्म करनेके लिये यही एक महा अग्नि है। तात्पर्य यह है कि णमोकार महामंत्रका प्रभाव अवर्णनीय है। ऐसा कोई भी शुभ कार्य नहीं है जो इसके प्रभावसे नहीं होता हो। इसलिये सर्वज्ञ णमोकार मंत्रका जप करना चाहिये। श्री अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पांच परमेष्ठियोंका निरंतर स्मरण करते रहना चाहिये।

---

*चारुदत्तस्तदा तस्मै छागायोच्चैः सुखप्रदान्।
सारपंचनमस्कारान् संन्यासं च प्रदत्तवान् ॥
धर्मिणो येऽत्र वर्तन्ते ज्ञातश्रीजिनसद्गिरः।
नित्यं परोपकाराय सन्ति ते परमार्थतः ॥
—आराधनाकथाकोश।

बकरोंका इसप्रकार वध हुआ जानकर चारुदत्तको बहुत दुःख हुआ और वह वहीं बैठकर रुद्रदत्तकी खूब निन्दा करने लगे। रुद्रदत्तने भी चुपचाप चारुदत्तकी फटकारें सुन लीं और फिर बोला कि भाई! जो होना था सो होगया। यह कार्य तो लाचारीकी अवस्थामें करना पड़ा है। इसके सिवाय और दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं था। इसप्रकार अनेक तरहसे समझाया, फिर भी चारुदत्तके चित्तमें शांति नहीं हुई और वह उदास होकर बैठ रहे।

मसकों द्वारा आकाशगमन।

दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गतिं प्रापक भवेत् पापिनां शुभम्॥
—आराधनाकथाकोश।

उधर उन सब लोगोंने बकरोंका चमड़ा उठाया और उसे उलटा करके मसक बनाली। मसकके भीतर तो रोम कर लिये और ऊपर गीला मांस कर लिया। ऐसा इसलिये किया था कि जिससे भेरुंड पक्षी इसे मांसपिण्ड समझकर वहांसे उठा लेजावें। चारुदत्तने बहुत चाहा कि मैं यहांसे अन्यत्र चला जाऊँ और इस मसकमें नहीं बैठूं। किंतु अन्यत्र जानेका कोई मार्ग ही नहीं था। इसलिये लाचार होकर उन्हें भी उस मसकमें बैठना पड़ा। वे

सब अपनी अपनी मसकोंमें छुरी लेकर बैठ गये और भीतर बैठनेके बाद मसकोंका मुँह सीं लिया। इस प्रकार मसकोंमें घुसकर वे सब चुपचाप उन्हींमें बैठे रहे।

थोड़ी देरके बाद वहांसे उडते हुये सात भेरुण्ड पक्षी आये।* उनमेंसे एक तो काना था और छह दो दो नेत्रवाले

---

* आराधना कथाकोशमें सात पक्षियोंका कथन नहीं है, किंतु उसमें मात्र चारुदत्त और उनके काका रुद्रदत्तके जानेका ही कथन है। उनके दो ही बकरे थे और दो ही पक्षी उन्हें उठाने आये थे।

यथा—छागयोश्चर्मभस्त्रायां तौ प्रविश्य स्थितौ ततः।
रत्नद्वीपात्समागत्य तदा भेरुण्डपक्षिणौ ॥
तौ समादाय चंचुभ्यां रत्नद्वीपं विनिर्गतौ।
—आराधना कथाकोश।

यहांपर "छागयोः" "तौ" "भेरुण्डपक्षिणौ" इत्यादि सभी पद २–२ की संख्याके स्पष्ट सूचक हैं।

इसी प्रकार हरिवंशपुराणमें भी बाकीके पांच मित्रोंका कोई उल्लेख नहीं है। उसमें मात्र चारुदत्त और रुद्रदत्तके जानेका ही वर्णन है। उनके दो बकरे थे, दो ही मसकें बनाई थीं, दो ही पक्षी आये थे और उन दोनोंको ही उठा लेगये थे। यथा:—

भारुण्डैश्चण्डतुण्डाभ्यां भस्त्रे नीते विहायसा।
भस्त्रा काणेन मेऽन्यत्र नीत्वा क्षिप्ता क्षितौ ततः॥
—हरिवंशपुराण।

यहां पर "भारुण्डैः (!)" बहुबचन है किन्तु 'तुण्डाभ्यां' द्विवचन है और "भस्त्रे नीते" भी द्विवचनमें आया है। इससे

थे। उनने पर्वतपर पड़ी भातड़ी देखीं और उन्हें मांस पिण्ड समझकर प्रसन्न होगये। और दौड़कर छह पक्षियोंने अपनी अपनी चोंचसे एक एक मसक उठाली। उसके बाद एक काने पक्षीने चारुदत्तकी मसक उठाई। और फिर वे सातों अपने देशकी ओर उड़ गये।

वे सब पक्षी आकाश मार्गमें उन मसकोंको लिये हुये उड़ते उड़ते समुद्रके बीचमें पहुंचे। ऊपर महान् आकाश था और नीचे अपरिमित महासागर! दैव योगसे उन्हें एक और पक्षी मार्गमें मिल गया। उसके पास कोई खाद्य पदार्थ नहीं था। और सात पक्षी अपने मुँहमें कुछ लटकाये हुये उड़ते जारहे थे। उन्हें देखकर उस पक्षीको ईर्षा उत्पन्न हुई और वह भूखा भी था, इसलिये उन पक्षियोंके पास गया। किन्तु जब उसने देखा कि यह सब बलवान हैं तब उसका साहस जाता रहा। फिर भी एक काने पक्षीको देखकर उसे कुछ साहस आया और वह उसके साथ लड़ने लगा।

सिद्ध है कि दो ही मसकें थीं और वे दो चोंचोंके द्वारा उठाई गई थीं। ऐसा होनेसे "भारुण्डै (!)" बहु वचनान्त प्रयोग अशुद्ध प्रतीत होता है। बहुतसे पक्षियोंने मिलकर दो मसकें उठाई हों सो भी ठीक नहीं है। कारण कि चारुदत्तकी मसक मात्र एक काणा पक्षी ही लेगया था। इससे मालूम होता है कि केवल दो ही पक्षी आये थे। चारुदत्त चरित्रमें सात पक्षियोंके आनेकी बात सात मसकोंके कारण लिखी गई प्रतीत होती है।

तथा उस मांस पिण्डको छुड़ानेका प्रयत्न करने लगा।*

जब उस काने पक्षीका वश नहीं चला तब उसने वह मसक समुद्रमें छोड़ दी फिर थोड़ी देर बाद उठाली, और जब वह पक्षी पुनः लड़नेको आया तब फिर उसी प्रकार उस मसकको नीचे डाल दी। इस प्रकार तीन बार चारुदत्तकी मसक पानीमें गिरी। और फिर अन्तमें वह पक्षी चौथीवार उस मसकको उठाकर उड़ता हुआ रत्नद्वीपमें लेगया और वहां रत्न-पर्वतकी शिखर पर जा रखी थोड़ी ही देरमें जब वह पक्षी उस मसकको मांस पिण्ड जानकर खानेका प्रयत्न करने लगा तब शीघ्र ही चारुदत्तने छुरी लेकर वह मसक काट डाली और बाहर निकल आये। और भेरुंडपक्षी उसमेंसे मनुष्यको निकलता हुआ देखकर अत्यन्त भयभीत हुआ और तुरत ही वहांसे भाग गया। और चारुदत्त उस स्थानको आश्चर्य चकित होकर देखने लगे।

इधर तो चारुदत्त अभीष्ट स्थान पर आगये किंतु उधर वे छहों पक्षी अपनी मसकोंको अन्यत्र ले गये। और जब उनके खानेका प्रयत्न करने लगे तब उन छहों मनुष्योंने

---

* हरिवंशपुराणमें न तो अन्य पक्षीसे युद्धकी बात है और न परस्परमें ही युद्धका जिकर है। आराधना कथाकोशमें भी अन्य पक्षीके आनेका कथन नहीं है। किन्तु रुद्रदत्त और चारुदत्तके पक्षियोंमें आपसमें ही लड़नेका कथन है जिससे रुद्रदत्तकी मसक समुद्रमें ही जा गिरी और वह मरकर कुगतिमें गया।

छुरीसे उन्हें फाड डाला तथा वे सब बाहर निकल आये। बाहर निकलकर सब एक दूसरेसे मिले, किन्तु जब सातवें चारुदत्तको नहीं देखा तब वे सब चिंतित और दुःखी हुये। रुद्रदत्त उन मित्रोंको साथ लेकर इधर उधर चारुदत्तकी खोजमें फिरने लगा। किन्तु न तो इन्हें चारुदत्तका पता लगा और न चारुदत्तको उनका ही पता था। इसलिये वे सब दुःखी एवं व्याकुल होकर जंगलके फल फूल खाते हुये यत्र तत्र घूमते फिरे। किन्तु चारुदत्तका पता न लगनेसे उनका दुःख बढ़ता ही गया। वे विचारे कभी अपने कर्मको दोष देते थे तो कभी विह्वल होकर अत्यन्त दुःखी हो जाते थे। इस प्रकार रुद्रदत्त आदि छह मित्र इधर चारुदत्तके न मिलनेसे दुःखी होरहे थे और उधर चारुदत्त रत्न-पर्वतपर उन अपने मित्रों और काका रुद्रदत्तको न पाकर चिंतित हो रहे थे।*

---

* इस कथामें रुद्रदत्त आदि छह मनुष्योंको अन्यत्र लेजाने, तथा चारुदत्तके वियोगमें फिरनेकी बात है। किन्तु आराधना कथा-कोषमें लिखा है कि दुष्टात्मा रुद्रदत्त दोनों पक्षियोंके युद्ध होनेके कारण समुद्रमें गिर पड़ा और वहीं मरकर दुर्गतिको प्राप्त हुआ।

यथा—दुष्टात्मा रुद्रदत्तोऽसौ समुद्रे पतितस्तदा।
मृत्वा स दुर्गतिं प्राप क्व भवेत्पापिनां शुभम्।
—आराधना कथाकोष।

—०:०—

जिनपूजा और मुनिदर्शन ।

सम्यक्त्वद्रुमसिंचने शुभतरा कादम्बिनी बोधदा ।
भव्यानां वरभारतीव नितरां दूती सतां सम्पदे ॥
मुक्तिप्रोन्नतमंदिरस्य सुखदा सोपानपंक्तिः शुभा ।
पायाद्वस्तु समस्तसौख्यजननी पूजा जिनानां सदा ॥

—आराधना कथाकोष ।
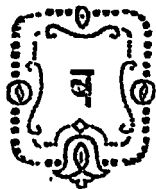
बहुत कुछ सोच विचार करनेके बाद चारुदत्त वहांसे उठे और धीरे धीरे आगेको बढ़े । कुछ ही दूर जानेपर उन्हें रत्नराशियां दिखाई दीं जिनकी जगमगाहट सूर्यकिरणोंसे भी अधिक प्रभावक थीं । उसे देखकर चारुदत्तकी और भी अधिक उत्कण्ठा बढ़ी और वह आगेको बढ़ते गये । थोड़ी दूर जानेपर उन्हें एक सुन्दर जिनालयके दर्शन हुये । उसकी शोभा देखकर चारुदत्तके हर्षका पार नहीं रहा । उस जिनालयकी भीतें स्वर्णमयी थीं । उनमें प्रकाशमान रत्न जड़े हुये थे । तथा बीचबीचमें हीरा, पन्ना, लाल आदि नंग जड़े हुये थे । दरवाजों पर मोतियोंकी बंदनवारें लटक रही थीं । तात्पर्य यह है कि वह जिनमन्दिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या, देवों तकके मनको मुग्ध कर लेनेवाला था ।

चारुदत्तने दर्शनके लिये उस मंदिरमें प्रवेश किया । प्रवेश करते ही भीतरकी शोभा देखकर वह अपने तमाम पूर्व दुःखोंको भूल गये और उनके रोम रोममें आनन्द व्याप्त हो

गया । जिस प्रकार सूर्यको देखकर कमल खिल जाते हैं उसी प्रकार मंदिरमें मनोज्ञ जिनप्रतिमाके दर्शन कर चारुदत्तका हृदयकमल प्रफुल्लित होगया । वे अपने मनमें फूले न समाये ॥ और हाथ जोड़कर जिनप्रतिमाको नमस्कार किया तथा तीन प्रदक्षिणा देकर अपना जन्म सफल बनाया । उस समय जिन-बिम्बके समक्ष हाथ जोड़कर चारुदत्त खड़े हो गये और गद्गद् होकर इस प्रकार स्तुति करने लगे—

स्तुति ।

जय जय परमेश्वर परमदेव । मनवचतन करि नित करौं सेव ।
कीनो छिनमें अघकरम नाशि । जीते अष्टादश दोषराशि ॥१॥
शुभ समवशरन शोभा अपार । जिन इन्द्रनमतकर सीस धार ।
देवाधिदेव अरहंत देव । वंदौं मन वच तन करौं सेव ॥२॥
जय जय मिथ्यातम हरन सूर । जय जय शिव तरुवरके अँकूर ।
जय काम विनाशनहार देव । जय मोहमल्ल मलदलन देव ॥३॥
तुम दर्शनतैं सुख है अनंत । तातैं वंदौ शिवरमनि कंत ।
जयसुरगमुकतिदाता जिनेश । जय कुगतिहरन भवभवकलेश ॥४॥
जय जय कंचनसम तन दिपंत । जय कोट दिवाकर मलिन कांत ।
ऐसे श्री जिनके दरश पाय । अघवृंद दूर छिनमें पलाय ॥५॥
ऐसे श्री जिनको वदन देख । मो गयो आज पातक विशेख ।
तुम धन्य जिनेश्वर देव आय । तिनके सुरनर खग परत पाय ॥६॥
धन आज मोहि लोचन विचार । तुम मूरत देखी हम निहार ।
धन मस्तक आज पवित्र मोहि । नमियों पदकमलनि देव तोहि ॥७॥
धनि धन्य आज मेरे जु पांय । तुम लौं प्रभु पहुंच्यो आजु आय ।
धन मेरे आज पवित्र हाथ । तुम परसे त्रिभुवनके सुनाथ ॥८॥

धन आनन मोहि पवित्र आज। रसना कर गुन गाये समाज।
प्रभु आजहि गयो कलंक मोह। देखी मूरत सुखकार तोय ॥९॥
अति मुदित भयो मुझ हियो संत। बहुविध स्तुति जिनकी करंत।
स्तुति करतैं नहिं उर अघाय। कर जोरि भाल निज नाय नाय ॥१०॥

चारुदत्तने इस प्रकार स्तुति करके भक्ति भावसे हर्ष-पूर्वक जिन पूजा की और कुछ समय तक वहीं बैठकर वह वहांसे उठे और बाहरको चल दिये। मगर उन्हें आसपासमें कोई भी मनुष्य दिखाई नहीं दिया। इसलिये वह कुछ विचारमें पड़ गये। थोड़ी ही दूर आगे जानेपर उन्हें एक गुफा दिखाई दी। चारुदत्त उसमें चले गये। वहां एक मुनिराज विराजमान थे। उन्हें देखकर चारुदत्तको बहुत हर्ष हुआ और उनके निकट जाकर इस प्रकार स्तुति करने लगाः—

जय जय गुरु भव अघ हरना, जय जय सुख संपति करना।
जय जय कंदर्प जु दलना, जय मोह महामद मलना ॥१॥
जय जय इन्द्रिय दे दण्ड, जय पंच महाव्रत मंड।
जय परिगहतैं सु उदासी, जय सप्त तत्वारथ भासी ॥२॥
जय समता राखत चित्त, देखत इकसे अरिमित्त।
अठवीस मूल गुण धारी, पुन सहत परीषह भारी ॥३॥
जिनके बच हैं सुख खानी, जिन संग कुगतिकी हानी।
तजि कुमति सुमति चित गहिये, तुम संगति शिव सुख लहिये ॥४॥
गुरु विन नहिं और सहाई, तुम ही परमारथ भाई।
जय जय जय आनंदकारी, जय जय करुणानिधि धारी ॥५॥

इस प्रकार स्तुति करके चारुदत्त मुनिराजके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े रहे तब मुनि महाराज 'धर्मवृद्धि' कहकर

बोले कि “ चारुदत्त ! तू कुशल तो है ? तेरा यहां कैसे आना हुआ ? ” मुनिराजके इस प्रकार वचन सुनकर चारुदत्त आश्चर्यचकित होगये और बोले कि मुनीश्वर ! आपने मुझे पहले कहां देखा है ? क्या आप मुझे पहिचानते हैं ? आपके श्रीमुखसे अपना नाम सुनकर मैं बड़े ही अचम्भेमें पडा हूं । क्या आप दया करके मेरा समाधान करेंगे ?

उपकृत जीवोंसे मिलाप ।

परोपकारिणो लोके सन्ति ये बुधसत्तमाः ।
कैः सुराद्यैर्न पूज्यन्ते महाभक्तिभरैश्च ते ॥
—आराधनाकथाकोश ।

चारुदत्तको आश्चर्यचकित देखकर मुनिराजने कहा कि वत्स ! मैं अमितगति विद्याधर हूं । तुम अभी भूले नहीं होगे कि मुझे चम्पापुरके बागमें एक वृक्षकी शाखापर मेरा दुष्ट मित्र कीलकर और मेरी पत्नीको लेकर भाग गया था, उस समय तुमने ही मुझे छुडाकर मेरे प्राण बचाये थे और मैं वहांसे छूटकर अपनी पत्नीको उस दुष्टके पाससे छुड़ा लाया था ।× इस प्रकार तुम्हारे ही

× चारुदत्त चरित्रमें पृष्ठ १६ पर लिखा गया है कि विद्याधर अपनी पत्नीको छुड़ानेके लिये अपने ग्राममें ही गया था और वहांसे अपने दुष्ट मित्रके पाससे छुड़ा लाया था । हरिवंशपुराणमें उत्तर-

प्रसादसे मेरा जीवन सुखी बन सका था। इसके बाद मैंने बहुत समय तक राज्य किया और विविध विभूतियोंका उपभोग किया। राज्य सुखके अतिरिक्त पुत्र पौत्रोंका भी खूब सुख भोग और अन्तमें निमित्त मिलनेपर यह दिगम्बरी दीक्षा धारण करली।*

डिशासे छुड़ा लानेकी बात है। किन्तु आराधना कथाकोशमें 'कैलाश' पर्वतसे छुड़ा लानेका कथन है।

यथा–ततः कैलाशनामानं गत्वाहं वेगतो गिरिम्।
धूमसिंहं खगं जित्वा गृहीत्वा कामिनीं निजाम्॥

* हरिवंशपुराणमें बहुत अच्छे ढंगसे परिचय दिया गया है। उससे मुनिराजकी पूर्व स्थितिका पूर्ण ज्ञान होजाता है। वह इसप्रकार है:–"मैं वही 'अमितगति' नामका विद्याधर हूं जिसको कि एक समय चम्पापुरीमें वैरीने कील दिया था, और उसको तुमने रक्षा की थी। तुम्हारे यहांसे आनेके थोड़े ही दिन बाद मेरे पिताको वैराग्य होगया। मैं परम सम्यग्दृष्टि सच्चरित्र था। मेरे पिताने मुझे राज्य सौंप दिया और आप 'हिरण्यकुम्भ' नामक गुरुके चरणकमलोंसें दिगम्बर दीक्षासे दीक्षित होगये। मेरी 'विजयसेना' और 'मनोरमा' नामकी दो पट्टरानियां थीं। विजयसेनाकी 'गंधर्वसेना' नामकी पुत्री हुई। और मनोरमाके बड़ा पुत्र 'सिंहयश' और छोटा पुत्र 'वराहग्रीव' नामक हुआ। ये दोनों पुत्र विनयादि गुणोंके मंदिर हैं। एक दिन मुझे भी संसारसे उदासीनता होगई। मैंने बड़े पुत्रको तो राज्य सौंप दिया और छोटेको युवराज बना महामुनि अपने पिताके पास जाकर दिगम्बर दीक्षा धारण करली। चारुदत्त! इस द्वीपका नाम 'कुंभकटक' है। इसके चौतरफा समुद्र है। और यह 'कर्कोटक' नामका विशाल पर्वत है। इसलिये अब तुम बताओ कि यहां तुम कैसे आये?" इत्यादि।

इस प्रकार मुनि महाराजने अपना सारा पूर्ववृत्तान्त सुनाया। उसी समय मुनिराज (विद्याधर) के दो पुत्र सिंहग्रीव * और वाराहग्रीव विमानमें बैठकर वहां मुनि वन्दनाके लिये आये। पहले वे जिनमंदिरमें गये और वहां जिन प्रतिमाको नमस्कार स्तुति की। × पश्चात् पूजा, नृत्य, भजनादि करके वे हर्ष और उत्साहपूर्वक मुनिराजके पास गये और हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगेः—

संसार सागरसे पार करनेवाले जहाज समान हे मुनिराज! तुम धन्य हो। जो तुम्हारे चरण-कमलोंकी भक्ति करते हैं वे तत्काल ही अशुभ कर्मोंका नाश करते हैं। निशदिन तुम्हारा स्मरण करनेसे प्रत्येक आत्मा क्रमशः मुक्ति प्राप्त कर सकता है। हे भगवन्! तुम्हीं सच्चे उद्धारक गुरु हो। तुम्हारी सेवा भक्ति पापको नाश कर स्वर्ग मोक्षको देनेवाली है। तुम करुणासागर हो, गुणोंके भण्डार हो, राग

हरिवंशपुराणके इस कथनसे विद्याधरके पिताके और निजके विद्यागुरु, विद्याधरकी रानियां, उनके पुत्र, द्वीपका नाम और पर्वतका नाम आदि ज्ञात होता है। यह बात इस चारुदत्त चरित्रमें नहीं है। आराधना कथाकोषमें भी कुछ विशेष वर्णन है।

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोषमें 'सिंहयश' नाम आया है।

× हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोशमें मंदिरमें आनेकी कोई बात नहीं है। किन्तु विमानसे सीधे उतरकर मुनिराजके पास आनेका कथन है।

द्वेष रहित हो, बाईस परीषहोंके विजेता हो, पर्वतोंके शिखर और कंदराओंमें रहनेवाले हो और संसारसे उदासीन किंतु सबको सुख देनेवाले हो । हे मुनिराज ! यदि सच पूछो तो तुम्हारे सिवाय अन्य कोई सुखदाता और भवसागरसे पार लगानेवाला नहीं है ।

इसप्रकार दोनों विद्याधर-पुत्रोंने मुनिराजकी खुब ही स्तुति और भक्ति की । तब मुनि महाराजने सबको कल्याणकारी उपदेश दिया । बादमें उन अपने पुत्रोंसे मुनिराजने कहा कि देखो, यह चारुदत्त है, यह जो कहें सो तुम करना और इनकी इच्छापूर्ति करना ।

यह सुनकर दोनों पुत्रोंने पूछा कि यह चारुदत्त कौन हैं ? कहांके रहनेवाले हैं ? इनके मांता पिताका क्या नाम हैं ? इनका यहां कैसे आना हुआ ? और आप इन्हें कैसे जानते हैं ? कृपया इनका पूरा परिचय दीजिये । तब मुनिराजने आदिसे अन्ततक सब हाल सुनाकर चारुदत्तका पूरा परिचय कराया । एक दूसरेका परिचय प्राप्त कर वे सब बहुत प्रसन्न हुये ।

उधर चारुदत्तके द्वारा दिये गये मंत्रके प्रभावसे उस रसकूपका वह मनुष्य और रुद्रदत्तके हाथसे मारा गया बकरेका जीव दोनों प्रथम स्वर्गमें देव हुये थे, उनने अवधिज्ञानसे अपनी पूर्व वातोंको प्रत्यक्षवत् स्पष्ट जाना और कहा कि यह स्वर्गसंपदा चारुदत्तके प्रसादसे ही हमें मिली है ।

अब अपना कर्तव्य है कि चारुदत्तके पास जाकर उसके चरणकमलोंके दर्शन करें ।

यह विचार कर उनने एक सुन्दर विमान तैयार किया। वह विमान स्वर्ण, हीरा, माणिक और मोतियोंसे सुशोभित मालूम होता था । उसमें रुनझुन रुनझुन करती हुई घंटियां शोभा देरही थीं । और ध्वजायें फहरा रहीं थीं । इसप्रकार मनोहर विमानमें बैठकर वे रत्नशैलपर गये । वहां जाकर जिनमंदिरकी पूजा की और फिर मुनिराजके पास गये जहां चारुदत्तकुमार बैठे थे । वहां पहुंचते ही उन देवोंने* मुनिराजको नमस्कार न करके पहले चारुदत्तको नमस्कार किया और फिर मुनि महाराजकी वन्दना की ।

यह अक्रमिक नमस्कार देखकर सिंहग्रीवने कहा× कि हे स्वर्गवासी देवो ! आप भले ही देव कहलाते हैं किन्तु मालूम होता है कि स्वर्गमें विवेक प्राप्त नहीं किया है । यह सुनकर देवोंने कहा कि वीरपुत्रों ! तुम हमें अविवेकी क्यों कह रहे हो ? हमने ऐसा कौनसा अविवेकका कार्य किया है ?

तब सिंहग्रीवने कहा कि क्या यह कम अविवेक है जो आपने पहले गृहस्थको नमस्कार किया और फिर बादमें गुरु महाराजकी वन्दना की ? अच्छा, आप ही कहिये कि

---

* आराधना कथाकोषमें मात्र एक ही देव (बकरेका जीव) का आना लिखा है ।

× आराधना कथाकोषमें लिखा है कि नमस्कार करते समय चारुदत्तने ही देवको रोका था । सिंहग्रीवने कुछ नहीं कहा था ।

क्या आपने यह उचित किया है ? यदि आप कोई युक्ति-संगत कारण बता सकें तो मैं भी माननेके लिये तैयार हूं। तब उस देवने जो बकरेका जीव था अपने पूर्वभवका सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

उपकृत देवोंका पूर्वभव।

पूर्वं कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः ।
कृतित्वमुपकार्यस्य नान्यथेति विदो विदुः ॥

—हरिवंशपुराण।

बहुत ही धन सम्पत्ति एवं वैभवयुक्त बनारस नगरी है। वहांके निवासी दिनरात आनन्द-विनोदमें अपना समय व्यतीत करते हैं। उसी नगरमें वेद पुराण और व्याकरणका ज्ञाता एक 'सोमशर्मा' नामका ब्राह्मण था। उसकी स्त्रीका नाम 'सौमिल्ला' था। वे दोनों बड़े ही आनन्दपूर्वक अपना गृही जीवन व्यतीत करते थे। उनके दो पुत्रियां थीं। एकका नाम था 'सुभद्रा'* और दूसरीका नाम था 'सुलसा'।

जब वे दोनों लड़कियां बड़ी हुई तब उन्हें पढ़नेके लिये पाठशालामें भेजा गया। कुछ समय बाद वे लड़कियाँ पढ़कर बहुत प्रवीण हो गईं और वादविवाद करनेमें खूब ही चतुर हो गईं। उन्हें अपने ज्ञानका कुछ मद भी था। इस-

---

* हरिवंशपुराणमें 'भद्रा' नाम आया है।

लिये वे प्रत्येक व्यक्तिसे शास्त्रार्थ करनेके लिये सदा तत्पर रहती थीं। कुछ समयके बाद जब वे लड़कियां विवाह योग्य हुईं तब उनने सन्यासिनी होकर निश्चय किया कि या तो हम इसी प्रकार साधु अवस्थामें अपना जीवन पूर्ण कर देंगी या फिर उसके साथ विवाह करेंगी जो हमें शास्त्रार्थमें हरा देगा।

यह बात कानों कान सर्वत्र फैल गई और लोगोंमें इसकी खूब चर्चा होने लगी। धीरे धीरे यह बात याज्ञवल्क नामक तपस्वी तक पहुंची। वह तपस्वी बहुत ही विद्वान था। तर्क छन्द और वेदादिकका ज्ञाता एवं वादविवादमें बहुत ही चतुर था। उसने निश्चय किया कि मैं उन लड़कियोंका ज्ञान-मद-उतारूंगा। यह विचार कर याज्ञवल्क बनारसकी ओर चल दिया। वहां पहुंचने पर उन सन्यासिनी लड़कियोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ। बहुत कुछ वाद विवादके बाद तपस्वी याज्ञवल्कने सुलसाको पराजित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया।

सुलसाके साथ ही उसकी बहिन सुभद्रा भी उस तपस्वीके आश्रममें रहने लगी। और वे आनन्दपूर्वक कालयापन करने लगीं। कुछ समयके पश्चात सुलसाके पुत्र उत्पन्न हुआ। इसलिये सन्यासी याज्ञवल्क चिन्तामें पड़ गया और विचारने लगा कि अब क्या करना चाहिये ? इस जंजालमें फंसना ठीक नहीं था। अभी भी इससे निवृत्त होनेका एक मार्ग है। यों विचारकर वह उस लड़केको एक पीपलके वृक्षके नीचे रख आया और स्वयं सुलसाको लेकर कहीं अन्यत्र चला गया।

जब सुलसाकी बहिन सुभद्राने उन दोनोंको वहां नहीं पाया तब वह इधर उधर उन्हें ढूंढने लगी । ढूंढते ढूंढते उसे पीपलके वृक्षके नीचे एक बालक पड़ा हुआ दिखाई दिया। सुभद्राने उसे अपनी बहिनका पुत्र जानकर उठा लिया और अपने स्थानपर ले गई। सुभद्राने उसे पीपलके नीचे पड़ा हुआ पाया था इसलिये उसका नाम 'पिप्पलादित्य' रखा* और बड़े ही प्रेमसे उसका पालन पोषण किया। जब वह कुछ बड़ा हुआ तब सुभद्राने स्वयं ही उसे पढ़ाना प्रारंभ कर दिया। कुछ ही समयके बाद वह बालक तर्क, छन्द, व्याकरण और काव्यका प्रकाण्ड वेत्ता हो गया। वास्तवमें जिसकी माता और संरक्षिका विदुषी हो उसका बालक क्यों न विद्वान होगा? पिप्पलादित्यको भी शास्त्रार्थ करनेका खूब शौक था। वह यज्ञ यागादिक और क्रियाकाण्डमें भी बहुत प्रवीण था। इसलिये धीरे धीरे उसकी भी खूब ख्याति हो गई।

एक दिन पिप्पलादित्यने सुभद्रासे पूछा कि माताजी! मेरा यह नाम रखनेका क्या प्रयोजन है?× तब सुभद्राने

---

* हरिवंशपुराणमें पिप्पलादित्यका नाम 'पिप्पलाद' बताया है। यथा—

तत्रोत्तानशयं भद्रा दृष्ट्वा स्वत्थफलादिनं ।
पिप्पलादाभिधानेन व्याहूयैनमवीवृधत् ॥

× हरिवंशपुराणमें पिप्पलाद द्वारा अपने नामका कारण पूछनेकी बात नहीं है, किन्तु उसने अपने पिताका नाम पूछा था और पूछा था कि क्या वे अभी जीवित हैं? यथा—

उसे आदिसे अन्त तकका सारा हाल सुना दिया और कहा कि तेरे माता पिता तो दूसरे ही हैं, मैंने तो तुझे मात्र पाल पोष कर बड़ा किया है, इसलिये तू अभी तक मुझे अपनी माता समझता रहा है। यह सुनकर पिप्पलादित्यके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा। उसने अपने माता पिताकी निर्दयतापर बहुत ही घृणा प्रगट की और उनकी इस कर्तव्यहीनताका बदला देनेका निश्चय किया। तथा सुभद्रासे आज्ञा लेकर वहांसे चल दिया। और अपने माता-पिताको ढूंढ़ता हुआ उनके पास जापहुंचा।

वहां पहुंचकर उसने मां-बापको अपना परिचय नहीं दिया और उनसे शास्त्रार्थ करना प्रारंभ कर दिया। उसमें उसे विजय प्राप्त हुई। विजयी होनेके बाद पिप्पलादित्यने अपना परिचय दिया और माता पिताकी मिथ्या विनयपूर्वक सेवा सुश्रूषा करने लगा। और अपने विद्याबलके प्रभावसे खूब ख्याति प्राप्त की तथा अपने अनेक अनुयायी बना लिये। मैं (वर्तमानमें देव) भी उसका जाज्ञवलि* नामक शिष्य होगया था और उसके पास खूब विद्याध्ययन करके ज्ञान प्राप्त किया।

पारगः सर्वशास्त्राणामेकदाऽपृच्छदित्यसौ।
मातः किमभिधानो मे पिता जीवति वा न वा॥
—हरिवंशपुराण।

* हरिवंशपुराणमें 'जाज्ञवलि' नहीं किन्तु वाग्बलि नाम आया है। यथा:—

पिप्पलादस्य शिष्योऽहं जडग्रन्थेन वाग्बलिः।
तद्दर्शनं समभ्यर्गागान्नरकं घोरवेदनं॥

उसके बाद मैंने यज्ञका प्रचार किया और अनेक बकरोंका बलिदान कराया। इतना ही नहीं, किन्तु अनेक मिथ्या शास्त्रोंका भी प्रचार किया। इसके फलस्वरूप अन्तमें रौद्र ध्यानपूर्वक मरा और घोर नरकमें गया। वहांपर वर्णनातीत दुःख सहन किये।

नरकोंमें छेदा जाना, भेदा जाना, गर्मी, ठण्डी आदिके दुःख सहन किये। कभी शूली पर चढ़ाया जाना, कभी शस्त्रोंसे शरीर विदारण होना, कभी बुरी तरह पीटा जाना, कभी खौलते हुये तेलकी कड़ाहीमें डाला जाना, कभी पानी मांगनेपर गरम करके पिघलाये हुये शीशेका पिलाया जाना आदिके घोर दुःख सहे। अनेक दुष्ट नारकी शरीरको छिन्न भिन्न करके उसपर खारा पानी छिड़क देते थे, उससे जो जो वेदना होती थी वह वर्णन नहीं की जासकती। वास्तवमें वहांपर दुःखके सिवाय लेशमात्र भी सुख नहीं है। करुणाका तो वहां नाम ही नहीं है। सब नारकी मिलकर नये नारकी-पर निर्दयतापूर्वक टूट पड़ते हैं और उसे बुरीतरह मारते हैं। मैंने इसप्रकार अनेक दुःख चिरकाल तक सहे। और आयु पूर्ण होनेपर मेरा दुखिया जीव वहांसे निकला।

वहांसे निकलकर भी कोई उत्तम गति नहीं मिली किन्तु बकरेका जन्म लिया। वहांपर भूख प्यास आदिका बहुत दुख सहन किया। इतनेसे ही मेरे दुखका अन्त नहीं हुआ था। इसलिये दुष्ट याज्ञिकोंके हाथमें पड़कर मैं यज्ञमें होमा गया। उसके बाद भी पुनः बकरेका जन्म धारण किया। वहां-

पर भी यज्ञमें मेरा होम किया गया। फिर भी बकरेका ही भव प्राप्त हुआ। इस प्रकार एकवार नहीं, दोवार नहीं किंतु सात वार बकरेका जन्म लेना पड़ा। उनमेंसे छहवार तो यज्ञमें होमा गया और सातवींवार प्राटक देशमें* बकरा हुआ।

जब रुद्रदत्त बकरोंको लाकर उनपर सवारी करके पहाड़पर जारहा था तब मैं भी चारुदत्तको लेकर पर्वतपर चढ़ रहा था। दुर्दैववशात् रुद्रदत्तने अन्य बकरोंकी भांति मेरा भी गला काट डाला। किन्तु सद्भाग्यसे चारुदत्तने मेरे ऊपर दया करके मरते समय पंच नमस्कार मंत्र दिया, जिसके प्रभावसे मैं ऋद्धिधारी देव हुआ हूं। × वहांपर अवधिज्ञानके द्वारा अपने उपकारीको जानकर मैं यहां आया हूं। मुझे जिनधर्मका उपदेश और णमोकार मंत्र देकर स्वर्ग प्राप्त करानेवाले चारुदत्त ही मेरे आद्य-गुरु हैं। इसलिये मैंने उन्हें ही पहिले नमस्कार किया है। इनने मेरा भारी उपकार किया है। भला मैं इनके इस उपकारको कैसे भूल सकता हूं?

---

* हरिवंशपुराणमें 'प्राटक' की जगह 'टंकणक' देश लिखा है। यथाः—सप्तमेऽपि च वारेऽहं देशे टंकणकेऽभवत्।
अज एव निजैः पापैः प्रेरितः प्राणिघातजैः॥

—हरिवंशपुराण।

× सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। यथा—

जातोऽहं जिनधर्मेण सौधर्मे विबुधोत्तमः॥ —हरिवंश०।

तत्प्रभावेन सौधर्मे देवो जातोऽहमद्भुतः॥ —कथाकोश।

इस प्रकार एक देवके पूर्वभव कहने पर दूसरे देवने भी अपना समस्त वृत्तान्त सुनाना प्रारंभ किया । वह बोला कि मुझे एक परिव्राजकने धोखेमें डालकर रसकूपमें पटक दिया था । उस समय चारुदत्त भी उसी प्रकार सन्यासीके जालमें फंसकर उस कुंयेमें उतरे। इनने मेरी मरणासन्न स्थिति देख कर मुझे धर्मोपदेश दिया और पंच नमस्कार मंत्र सुनाया । उसके प्रभावसे मैं सौधर्म स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुआ हूं। यही कारण है कि मैं भी चारुदत्तको अपना आद्य-गुरु मानता हूं और इसी लिये मैंने मुनिराजसे पहिले चारुदत्तको नमस्कार किया है। चारुदत्तके ही उपकारका यह फल है कि हम दोनों ऋद्धिधारी देव हुये हैं। अब आप ही कहिये कि उन्हें यदि हम दोनोंने अपना प्रथम गुरु मानकर पहले नमस्कार किया तो उसमें कौनसी अनुचित वात हुई है ? जिसने मुझे नगण्य अवस्थासे इतना वड़ा किया है उसे हम मानपूर्वक नमस्कार क्यों नहीं करें ?

यदि कोई एक अक्षरका ज्ञान करादे, या आधे पदका ज्ञान करावे अथवा एक पदका दाता भी हो तो उसे कभी नहीं भूलना चाहिये । यदि कोई ऐसे उपकारीको भूल जाता है तो वह महान पापी है, फिर जो अपने धर्मोपदेशक या उद्धारकको भूल जाय तो उससे वढ़कर पापी कौन होसकता है ?*

---

* पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्महस्तावलम्बनं ।
ददता कः समो लोके संसारोत्तारणं नृणां ॥

इसलिये हमारा तो निश्चय है कि अपने उपकारकर्ताकी सदा स्तुति करना चाहिये और जिस णमोकार मंत्रके प्रभावसे हमारा उद्धार हुआ है उसका सदा ही जप करना चाहिये। इसप्रकार देवोंके द्वारा अपने पूर्वभवका कथन और मुनिराजके पहिले चारुदत्तको नमस्कार करनेका कारण जानकर सिंहग्रीव और वराहग्रीव बहुत ही हर्षित हुये।

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनं॥
पूर्वं कृतोपकारस्य पुंसः प्रत्युपकारतः।
कृतित्वमुपकार्यस्य नान्यथेति विदो विदुः॥
तत्कृतौ शक्तिवैकल्ये कुलीनः स कथं न यः।
सद्भावं दर्शयेत्तस्मै स्वाधीनं विगतस्मयः॥

—हरिवंशपुराण।

अर्थ–पापरूपी कूपमें डूबे हुये जीवोंको जो मनुष्य धर्मरूपी हाथका सहारा देनेवाला है, भला कहिये लोकमें उसके समान कौन उपकारी है? एक अक्षरको या आधे पदको अथवा एक पदको प्रदान करनेवाले भी मनुष्यको भूल जानेवाला मनुष्य जब पातकी कहलाता है तब कल्याणकारी धर्मके उपदेश देनेवालेको भूल जानेवाला तो परम पातकी समझना चाहिये। विद्वानोंका मंतव्य है कि उपकार्य मनुष्य उसी समय पुण्यवान समझा जाता है जब कि वह दुःखमें उपकार करनेवाले अपने उपकारीका भलेप्रकार प्रत्युपकार करे। यदि उपकार करनेकी सामर्थ्य न हो तो वह भी पुरुष उत्तम और पुण्यवान समझा जाता है जो निरभिमानी होकर अपने उपकारीके साथ शुभ भाव प्रगट करता है।

फिर दोनों देवोंने हाथ जोड़कर चारुदत्तसे कहा कि हे उपकारी वीर! आपका ऋण हम कैसे चुका सकेंगे? कृपाकर मेरे योग्य कोई सेवा बताइये। आपकी सेवा करके ही हम कृतार्थ होंगे। देवोंकी विनयपूर्ण प्रार्थना सुनकर चारुदत्तने कहा कि हमारे रुद्रदत्त आदि छह मित्र न जाने कहां मारे मारे फिरते हैं। आप उन्हें लाकर मेरे साथ मिलाप कराइये। विशेष तो आपसे अभी हमें कोई काम नहीं है। यह सुनकर दोनों देव विमानमें बैठकर आकाशमें उड़ गये। और रुद्रदत्त आदिको लाकर चारुदत्तके सामने ही उपस्थित किया *

उस समय सातों मित्र गलेसे गला लगाकर खूब मिले और अपने अपने सुख दुखकी सब बातें कह सुनाईं। कुशल समाचार पूछनेके बाद सब लोग आनन्दित होगये। तत्पश्चात् उन दोनों देवोंने चारुदत्तको कहा कि आपको जितने द्रव्यकी आवश्यक्ता हो सो मुझे आज्ञा दीजिये, हम उतना द्रव्य आपकी सेवामें उपस्थित कर देंगे। चारुदत्त कुछ कह ही

---

* हरिवंशपुराणमें ऐसा कोई कथन नहीं है कि चारुदत्तने देवोंसे रुद्रदत्त आदिको लानेकी प्रर्थना की हो या देव उन्हें लेनेके लिये गये हों और भेट कराई हो। वहां तो मात्र इतना ही वर्णन है कि देवों द्वारा प्रार्थना किये जानेपर चारुदत्तने कहा कि अभी आप अपने२ स्थानपर जाइये। फिर जब कभी मैं स्मरण करूँ तब आप मेरी सहायता करना। आराधना कथाकोशमें भी रुद्रदत्त आदिको बुलाने या उनसे मिलाप होनेकी कोई बात नहीं है। वहां तो इसके पूर्व ही रुद्रदत्तका समुद्रमें मरण बताया गया है।

नहीं पाये थे कि सिंहग्रीव और वराहग्रीवने देवोंसे कहा कि आप कोई कष्ट न करें, हम स्वयं ही चारुदत्तकी इच्छा पूर्ण करेंगे और यह जो भी सेवा कहेंगे उसे हम करेंगे। इन्हें हम यथेच्छ धन देकर चम्पापुर भेज देंगे। यह सुनकर देवोंने चारुदत्तकी आज्ञा ली और अपने स्थानको चले गये *

स्वदेश गमन।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

इसके बाद सिंहग्रीव और वराहग्रीवने चारुदत्तसे अपने देशको चलनेके लिये प्रार्थना की। चारुदत्तने भी इसे स्वीकार किया। तब उनने एक सुंदर विमान सजाया। वह विमान मणिमुक्तादिसे जड़ित होनेके कारण बहुत ही शोभित होरहा था। उसमें मनोहर

---

*हरिवंशपुराण और आराधनाकथाकोशमें बताया है कि देवोंने जानेके पूर्व चारुदत्तको ऐसे वस्त्र भेट किये थे जो अग्निमें न जल सकें और उत्तम मालायें, उबटन, आभरणादिसे विभूषित किया था।

यथाः—वस्त्रैरग्निविशोध्यैर्मा भूपामाल्यविलेपनैः।
भूषयित्वाससत्कारमभाषेतां सुभूषणैः॥
—हरिवंशपुराण।

वस्त्राभरणसंदोहैश्च रुद्रत्तं गुणोज्वलम्।
समभ्यर्च्य पुनर्नत्वा स्वर्गलोकं गतो मुदा॥
—आराधना कथाकोश।

शब्द करनेवाली घूंघरू और घंटा लगे हुये थे। तथा चारों ओर ध्वजा पताकायें फहरा रही थीं। दोनों विद्याधर और चारुदत्त मुनिराजको नमस्कार करके उस विमानमें बैठे और आकाशमें प्रयाण किया। थोड़ी देरके बाद विद्याधरोंका विमान उनके नगरके निकट पहुँचा और नीचे उतरा।*

उस नगरकी अपूर्व शोभा देखते ही बनती थी। उस पर भी विद्याधरोंने उसे और भी सुसज्जित करके देवपुरीसे भी अधिक सुन्दर बना दिया। घर घरमें बन्दनवारें बांधी गईं और बाजार सजाया गया। फिर चारुदत्तने नगरमें प्रवेश किया। उन्हें नगरकी शोभा देखकर बहुत ही आनन्द हुआ। विद्याधर स्वागत विधि एवं मंगलाचरणके बाद चारुदत्तको अपने महलोंमें लेगये। और बड़े ही ठाटबाटके साथ आदर सन्मान करके सुख एवं सन्तोष प्राप्त किया।×

चारुदत्त वहां बड़े ही आनन्दसे रहने लगे और विद्या आराधन एवं ज्ञान संपादन करते हुये कालयापन करने लगे। वहां रहते हुये चारुदत्तने विद्याधरोंकी बत्तीस कुमारिकाओंके

---

*विद्याधरोंके उस नगरका नाम 'शिवमंदिर' था। यथा:—

अहं च मुनिमानम्य विमानेन विहायसा।
खेचराभ्यां सहायातः प्राविशं शिवमंदिरम् ॥

—हरिवंशपुराण।

×आराधना कथाकोशमें 'शिवमंदिर' आदिमें जानेका कोई कथन नहीं है। वहां सीधे चम्पापुरी ही पहुंचनेका वर्णन है।

साथ विवाह किया। वे कुमारियां अनन्त रूप गुण एवं सुलक्षण युक्त थीं। चारुदत्त अपने लिये निर्माण कराये गये जुदे महलोंमें उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। और पूर्व पुण्यके उदयसे विविध भोगोपभोग करने लगे।

उन विद्याधर कुमारियोंके साथ नाना भांतिकी क्रीड़ा करते हुये चारुदत्त अपने तमाम दुखोंको भूल गये और इन्द्रोंके समान आनन्दानुभव करने लगे।* इसप्रकार चारुदत्त निरंतर आनन्दमग्न रहते थे और अनेक विद्याधर उनकी सेवा किया करते थे। चारुदत्त उन बत्तीस कुमारियोंके साथ जिसप्रकार आनन्द क्रीड़ा करते थे उसीप्रकार समयानुसार जिनपूजा आदि श्रावकके नित्यकर्मोंको भी बड़ी ही चावसे किया करते थे।

एक दिन रात्रिको सुखनींदमें सोते हुये चारुदत्त एकदम चोंक उठे और उन्हें घरकी चिन्ताने आ दबाया। तब वह इसप्रकार विचार करने लगे कि मुझे अब अपने नगरमें जाकर माता और स्त्रीसे मिलना चाहिये। उनसे अलग हुये बहुत समय व्यतीत होगया है। न जाने माताजी और पत्नीकी गुजर कैसे चलती होगी। वे अपने दिन किसप्रकार पूरे कर रही होंगी। इसलिये अब बिना कुछ सोच विचार किये शीघ्र ही उनके पास जाना चाहिये।

---

*हरिवंशपुराणमें विद्याधर कुमारियोंके साथ विवाह करनेका कोई कथन नहीं है।

इसप्रकार सोच विचार करते करते सवेरा होगया। तब चारुदत्तने सिंहग्रीवसे कहा कि कृपा करके अब मुझे अपने घर जानेकी आज्ञा दीजिये। यह सुनकर विद्याधर सिंहग्रीवको बहुत दुःख हुआ, और वह बोला कि कुमार! इतनी प्रीति बढ़ाकर अब आप यह क्या कह रहे हैं? आपको हमारे राज्यमें रहनेसे यदि किसी प्रकारका कोई संकोच हो तो यह राज्यभार आप ही सम्हालिये और हम आपके सेवक होकर रहेंगे। कृपया अब आप अपने देश जानेकी बात नहीं कहें। मुझे यह सुनकर भारी दुःख होता है।

विद्याधर सिंहग्रीव आदिकी यह स्नेहपूर्ण बातें सुनकर चारुदत्तने कहा कि राजन्! मैं आपके इस प्रेम और कृपाके लिये आभारी हूं। वास्तवमें आपकी ही कृपाका यह फल है कि मैं इतना सुखी होसका हूं। आपके राज्यमें रहते हुये मुझे न तो कोई संकोच है और न चिन्ता ही है। किन्तु अब माता, पत्नी और कुटुम्बीजनोंकी भी खबर लेना आवश्यक है। वे न जाने किसप्रकार अपने दिन बिताते होंगे। इसलिये अब आप मुझे नहीं रोकिये और सहर्ष जानेकी आज्ञा दीजिये। इस प्रकार चारुदत्तका हठ देखकर विद्याधरने उन्हें जानेकी सम्मति दे दी। और उनके जानेका सुयोग्य प्रबन्ध कर दिया।

गंधर्वसेनाके साथ प्रयाण।

चारुहंसविमानेन साकं गंधर्वसेनया।
आनीय मित्रदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया॥
—हरिवंशपुराण।

विद्याधर सिंहग्रीवने चारुदत्तके जानेके पूर्व उनसे विनयपूर्वक कहा कि आपको हमारा एक कार्य करना होगा। रूप लावण्य और अनेक लक्षणोंसे युक्त गन्धर्वसेना नामकी मेरी एक सुन्दर कन्या है।* वह वीणावादनमें बहुत ही प्रवीण है तथा कलामय संगीतमें भी उसके सामने कोई नहीं टिक सकता। उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि मुझे जो वीणावादनमें जीत लेगा मैं उसीके साथ अपना विवाह करूँगी। गन्धर्वसेनाकी यह प्रतिज्ञा सर्वत्र फैल चुकी है और अनेक राजा महाराजा तथा विद्याधरोंने आकर अपना वीणाचातुर्य भी दिखाया है, किंतु सब अपनासा मुँह लेकर पराजित हो वापिस चले गये। अभीतक गंधर्वसेनाको जीतनेवाला कोई भी चतुर व्यक्ति नहीं मिला। अब हमें यहांपर कोई ऐसा व्यक्ति मालूम नहीं पड़ता कि जो अपने वीणावादनसे गंधर्वसेनाको विवाह ले। इसी लिये हम सबको एक चिन्ता लगी रहती है।

---

* हरिवंशपुराणमें गंधर्वसेना सिंहग्रीवकी पुत्री नहीं किन्तु बहिन बताई गई है। वहां सिंहग्रीव और वराहग्रीवको "कन्यायाः भ्रातरौ" लिखा है। यही ठीक भी है।

एक दिन मैंने* एक निमित्तज्ञानी मुनिराजसे पूछा कि गंधर्वसेनाको वीणावादनमें कौन जीतेगा और उसका भावी पति कौन होगा ? तब मुनि महाराजने मुझे उत्तर दिया कि "श्रेष्ठिकुमार चारुदत्त जब अपने घर पहुँचेगा तब उसके यहां एक यादवपति कुमार आयगा, वही गंधर्वसेनाका स्वामी होगा ।"×

इसलिये मित्र ! आप तो परोपकारी वीर एवं सज्जनोत्तम पुरुष हैं । कृपया आप गंधर्वसेनाको अपने साथ लेजाइये और वीणावादनमें जो योग्य पुरुष इसे जीत ले उसके साथ इसका विवाह सम्बन्ध करा दीजिये । गंधर्वसेना अब विवाह

---

* गंधर्वसेना सिंहग्रीवकी पुत्री नहीं किन्तु बहिन थी । इसलिये उनके पिता अमितगति विद्याधर (राजा) ने मुनिराजसे प्रश्न किया था, न कि सिंहग्रीवने । यथा:—

चारुदत्त शृणु श्रीमानेकदावधिचक्षुषं ।
राजेति पृष्टवान् भर्ता के मे दुहितुरीक्ष्यते ॥

—हरिवंशपुराण ।

×मुनिराजके यह वचन सुनकर पिताजीने गंधर्वसेनाके विवाहका निश्चय आपके ऊपर ही स्थिर रखा । किन्तु पिताजी तो दीक्षा लेकर मुनि होगये हैं, इस समय अब वे हैं नहीं । इसीलिये उनके मंतव्यानुसार आप ही मालिक हैं । जैसा जो आपको उचित प्रतीत हो सो करिये । यथा:—

इत्याकर्ण्य तदा तेन राजा प्रव्रजतापि च ।
स्थिरीकृतमिदं कार्यं प्रमाणं त्वं ततोऽसि नः ॥

—हरिवंशपुराण ।

योग्य भी होचुकी है । वह विवेकपूर्वक अपने भावी पतिको चुन सकेगी । इसलिये अब आप ही इसे अपने नगरमें लिवा जाइये । इस प्रकार अनेक तरहसे समझाकर और चारुदत्तकी स्वीकृति प्राप्त करके गंधर्वसेना उन्हें सोंप दी तथा चलनेकी तैयारी की ।

जिस समय चारुदत्त गंधर्वसेनाको लेकर अपने नगरकी ओर प्रयाण करने लगे उस समय विद्याधरोंने चारुदत्तको विवाही गई अपनी२ कन्याओंकी भी विदा उनके साथ कर दी । चलते समय किसीने चारुदत्तको भेटमें हाथी घोडा दिये तो किसीने रथ पयादे दिये । किसीने नौकर चाकर दिये तो किसीने कर कंकण और मुक्ताहार अर्पण किये । किसीने छत्र चमर और हाथी आदि भेट किये तो किसीने अतुल भण्डार सोंप दिया । किसीने नाना प्रकारके वस्त्राभरण दिये तो किसीने रत्नजड़ित सिंहासन, मुकुट और छत्रादि अर्पण किये । किसीने हीरा, माणिक, मोती, पन्ना और अनेक प्रकारके जवाहिरात दिये तो किसीने दलबल सहित महान सैन्य देकर अपनी भक्तिका प्रदर्शन किया ।

इसप्रकार एकसे एक बढ़कर भेटें दीजानेके बाद बड़े ही ठाटबाट और गाजेबाजेके साथ चारुदत्तकी विदा की गई । जाते समय सिंहग्रीव और वराहग्रीवने गंधर्वसेनाको तिलक किया और बड़ी धूमधामके साथ विदा करदी । विदा करते समय गंधर्वसेनाकी माताका हृदय भर आया, इसलिये उसने अपनी पुत्रीको गले लगा लिया और आंखोंसे गरम गरम

आँसू बहाती हुई बोली कि बेटी ! तू परदेश जारही है। तेरे विछोहके कारण मुझे भारी दुःख होरहा है। अब मैं तेरे बिना यहां अकेली कैसे रहूँगी ? तेरे बिना मुझे इस घरमें कैसे चैन पड़ेगी ? कौन जाने अब तू मुझे कब मिलेगी ! इस प्रकार दुःख और विलाप करती हुई माताने गंधर्वसेनाको अपनी छातीसे लगाकर बहुत ही मोह प्रगट किया और आकुल व्याकुलसी होकर खूब रोने लगी ! इसी प्रकार अन्य विद्याधर पुत्रियोंको उनकी माताओंने अनेक प्रकारकी सीख देकर विदा किया।

इस प्रकार जब चारुदत्तने अपने नगरकी ओर प्रयाण किया तब नगरजनोंके मनमें भी भारी दुःख हुआ। उससमय अनेक स्नेही मित्र और नगरके प्रतिष्ठित जन चारुदत्तको गले लगाकर भेट करने लगे। चारुदत्त गंधर्वसेना और अपनी विद्याधरी पत्नियोंको साथ लेकर सुसज्जित विमानमें बैठ गये।*

---

* जाते समय चारुदत्तने अपने मित्र उन दो देवोंको स्मरण किया था। स्मरण करते ही वे दोनों देव निधियाँ लेकर वहां आगये। और अपने सुन्दर "हंस विमान" में बिठाकर गंधर्वसेना सहित चारुदत्त आदिको चंपापुरी लेगये थे। यथाः—

मित्रकार्यसमुद्युक्तौ मित्रदेवौ मया स्मृतौ ।
स्मरणादेव संप्राप्तौ निधिहस्तौ ममांतिकं ॥
चारुहंसविमानेन साकं गंधर्वसेनया ।
आनीय मित्रदेवौ मां भूत्या विस्मयनीयया ॥

—हरिवंशपुराण ।

साथ ही सिंहग्रीव आदि विद्याधर भी सैन्य सहित अपने२ वायुयानोंमें बैठकर चल दिये। आकाशमार्गसे विमान चम्पापुरीकी ओर उड़ते जारहे थे और साथ ही विविध प्रकारके बाजे बजते जाते थे। उस समय नगरजनोंको ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वर्गोंमें देवगण ही आनन्द क्रीड़ा कररहे हों।

आकाशमार्गमें वे सब आनन्द विनोद करते हुये चम्पापुरी नगरीमें जापहुँचे। वे सब नगरके पास ही गाजेबाजेके साथ उतरे ओर आनन्दोत्सव मनाने लगे। जब चम्पापुरीके राजा विमलवाहनको यह खबर हुई तब वह अपने इष्टमित्र और नगरजनोंके साथ चारुदत्तसे मिलनेके लिये वहां आया। चारुदत्तने राजाको आया हुआ देखकर उसकी यथायोग्य विनय की और अनेक बहुमूल्य वस्तुयें भेट कीं। इसप्रकार चारुदत्तका सज्जनोचित व्यवहार देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और चारुदत्तको पुनः पूर्व स्थितिमें देखकर खुब ही हर्षित हुआ। इसी हर्षमें राजा विमलवाहनने चारुदत्तको अपना आधा राज्य सौंपकर अपने हाथसे तिलक किया। और नगरमें बड़ी ही धूमधामके साथ आनन्दोत्सव मनाया।*

इस आनन्दोत्सवमें नगर और बाजारकी शोभा की

---

*हरिवंशपुराणमें ऐसा कोई कथन नहीं है। चारुदत्तको आधा राज्य दिये जाने आदिकी बात मात्र इसी कथामें है। हरिवंशपुराणमें तो मात्र इतना ही कथन है कि देवोंने चारुदत्तको चंपापुरी पहुंचाकर पूर्ण व्यवस्था की और उन्हें अक्षय निधियां देकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अपने स्थानको चले गये। यथाः—

गई तथा विविधप्रकारके बाजोंसे सारा नगर गूंज उठा। कहीं भेरी, तुर पटह और सहनाई बज रही थी तो कहीं अनेक प्रकारके वाजिंत्र एक ही साथ (बैंड) बजाये जाते थे। कहीं निशान घूम रहे थे तो कहीं नृत्यादि होरहे थे। इस प्रकार सभी नगरजनोंने खूब ही आनन्द मनाया और याचकोंको दान दिया।

इसप्रकार आनन्दोत्सव सहित चारुदत्तने अपने चतुरङ्ग दलके साथ नगरमें प्रवेश किया। उस समय नगरमें जो उत्साह था वह वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय नगरजन इस प्रकार चर्चा कर रहे थे कि वास्तवमें यह सब पुण्यका ही प्रभाव है कि चारुदत्त अपनी पूर्व स्थितिमें फिरसे आगया। जो भानुदत्तका पुत्र (चारुदत्त) भिखारीसे भी बुरी स्थितिमें नगर छोडकर चला गया था वही महान विभूतिको लेकर पुनः इसी नगरमें राजसन्मानित होकर

सुव्यवस्थाप्य चंपायामक्षय्यैर्निधिभिः सह।
नत्वा देवौ गतौ स्वर्गं खेचरौ च निजास्पदं॥
—हरिवंशपुराण।

इस प्रकार नगरीमें जाकर चारुदत्त सीधे अपने मामा, मां, स्त्री और कुटुम्बी आदिसे मिले और आनंदपूर्वक रहने लगे। यथाः—

मातुलं मातरं पत्नीं बंधुवर्गं च सादरं।
दृष्ट्वा तुष्टमतिं प्राप्तं प्राप्तोऽहं सुखितां परं॥
—हरिवंशपुराण।

समझमें नहीं आता कि कथाकारने राजाद्वारा आधा राज्य दिये जानेकी बात किस आधारसे लिखी है।

आया है। पुण्यके माहात्म्यको कौन वर्णन कर सकता है? पुण्यके प्रभावसे ही शुभ गति मिलती है और पुण्यके द्वारा ही विभव सम्पत्ति प्राप्त होती है। पुण्य ही त्रिभुवनमें सारभूत है। पुण्यके प्रतापसे शत्रु भी मस्तकपर धरे धरे फिरता है और पुण्यके प्रभावसे ही शत्रु दलका नाश होता है। पुण्यके माहात्म्यसे ही यश और आनन्दकी वृद्धि होती है तथा पुण्यके प्रसादसे ही धनबल, विद्याबल तथा रूपकी प्राप्ति होती है। पुण्यके माहात्म्यसे कर्मोंका नाश होता है और पुण्यके द्वारा ही ज्ञानका प्रकाश होता है। पुण्यकी महिमा अपरम्पार है। पुण्यवानके लिये कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं है। यहांतक कि मोक्षप्राप्तिमें भी पुण्यका आधार है। इसलिये सुख चाहनेवाले सभी मनुष्योंको पुण्य संचयका प्रयत्न करना चाहिये *

पुण्यवान चारुदत्तने आनन्दपूर्वक नगरमें प्रवेश किया

---

* श्री अमितगति आचार्यने पुण्यकर्मके विषयमें लिखा है:—

द्वीपे जलनिधिमध्ये गहनवने वैरिणां समूहेऽपि ।
रक्षति मर्त्यं सुकृतं पूर्वकृतं भृत्यवत् सततम् ॥
विपदोऽपि पुण्यभाजां जायंते संपदोऽत्र जन्मवताम् ।
पापविपाकाद्विपदो जायंते संपदोऽपि सदा ॥
द्वीपे चात्र समुद्रे धरणीधरमस्तके दिशामन्ते ।
पातं कूपेऽपि विधी रत्नं योजयति जन्मवताम् ॥
पुरुषस्य भाग्यसमये पतितो वज्रोऽपि जायते कुसुमम् ।
कुसुममपि भाग्यविरहे वज्रादपि निष्ठुरं भवति ॥

और सबसे पहिले वे अपने साथियोंके साथ जिनमन्दिरमें गये तथा दर्शन पूजन करके विशेष पुण्य संपादन किया। बादमें धरोहर रखा हुआ अपना मकान द्रव्य देकर छुड़ा लिया और उसमें अपनी माता तथा स्त्रीको बुलवा लिया। उनके आते ही चारुदत्तने सबसे पहले माताके चरणोंमें नमस्कार किया और आशीर्वाद प्राप्त करके उसीके पास बैठ गया। बहुत वर्षोंसे बिछुड़े हुये माता और पुत्रका मिलाप उस समय करुणा और आनन्दकी गंगा जमुनी धारा प्रगट कर रहा था। पुत्रको देखकर माताका हृदय फूला न समाया और उसकी आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे। उधर चारुदत्तके भी हर्षका पार नहीं था।

मातासे मिलनेके बाद चारुदत्त अपनी पत्नीसे मिले। और कुशल समाचारके बाद अनेक प्रकारसे आनन्द विनोदकी बातें करने लगे। बादमें चारुदत्तने अपनी माताको सिंहासनपर विराजमान किया और उसके बाद अपनी पत्नीको बैठाया और फिर आनन्द एवं उत्साहपूर्वक अपनी पत्नी सुमित्राको विधिसहित पट्ट बांधकर पट्टरानीका पद दिया। तथा उसके उपलक्षमें बड़ा भारी उत्सव मनाया।

बांधवमध्येऽपि जनो दुःखानि समेति पापपाकेन।
पुण्येन वैरिसदनं यातोऽपि न मुच्यते सौख्यम्॥
दिशि विदिशि वियति शिखरिणि संयति गहने वनेऽपि यातानाम्।
योजयति विधिरभीष्टं जन्मवतामभिमुखीभूतः॥

—सुभाषितरत्नसंदोहः।

वसंततिलकासे विवाह।

* अहो चेष्टितमार्यस्य महौदार्यसमन्वितं।
अहो पुण्यमलं गण्यमनन्यपुरुषोचितं॥

—हरिवंशपुराण।

उधर वेश्यापुत्री वसन्ततिलका चारुदत्तके वियोग होनेके बाद यह प्रतिज्ञा किये बैठी थी कि इस भवमें तो मेरे पति चारुदत्त ही हैं, और उनके सिवाय सभी पुरुष पिता और भाईके समान हैं। वेश्या वसन्ततिलकाकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा नगरभरमें फैल गई। तब राजा और प्रतिष्ठित प्रजाजनोंने चारुदत्तको समझाया कि आप वसन्ततिलकाको स्वीकार करिये। कारण कि उसने आपके सिवाय किसी भी अन्य पुरुषकी इच्छा तक नहीं की है और अणुव्रत धारण करके आपकी माताकी सेवा करती हुई उन्हींके पास रहती है।× चारुदत्तने भी विवेकसे काम लिया। और वेश्या वसन्ततिलकाको सहर्ष

---

*अर्थ—उत्तम पुरुषोंकी उदारतापूर्ण चेष्टाओंको धन्य है। तथा अन्य पुरुषोंके लिये दुर्लभ किन्तु ऐसे महापुरुषोंको प्राप्त पुण्यके लिये भी धन्य है।

× हरिवंशपुराण आदिमें राजादि द्वारा समझानेकी कोई बात नहीं है। किन्तु चारुदत्तने स्वयं ही वसंततिलकाको उदारतापूर्वक स्वीकार किया था। स्मरण रहे कि अन्य ग्रन्थोंमें वसन्ततिलकाको "वसन्तसेना" के नामसे लिखा है।

स्वीकार किया।* तथा उसे अपनी द्वितीय पट्टरानी पदपर स्थित किया।

इसके अतिरिक्त अन्य विद्याधर कन्याओंको भी यथायोग्य पद दिया और आनन्दपूर्वक अपना गृहीजीवन विताने लगे। इसप्रकार चारुदत्त अपने पूर्व दुःखोंको भूलकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे। उनके साथ जो विद्याधर आये थे उनका भी चारुदत्तने यथोचित आदर-सत्कार किया और सबको प्रीतिभोज दिया। सिंहग्रीव विद्याधरके साथ चारुदत्तका दिन

---

*तां शुश्रूषाकरीं श्वश्रू मदणुव्रतसंगतां।
श्रुत्वा वसन्तसेनां च प्रीतः स्वीकृतवानहं॥
—हरिवंशपुराण।

वेश्या वसन्तसेना अपनी मांका घर त्यागकर मेरे (चारुदत्तके) घर आगई थी और उसने आर्यिकाके पास जाकर श्राविकाके व्रत (अणुव्रत) धारण कर मेरी मां और स्त्रीकी सेवा की थी। इसलिये मैं (चारुदत्त) उससे भी मिला और उसे सहर्ष अपनाया (हरिवंशपुराण भाषाटीका पं० गजाधरलालजी शास्त्री कृत।)

इसी बातको स्व० पंडितप्रवर दौलतरामजीने अपनी भाषाटीका वचनिकामें इस प्रकार लिखा है:—

"अर यह कलिंगसेना वेश्याकी पुत्री वसंतसेना पतिव्रता मेरे परदेश गये पीछे अपनी माताका गृह छोड़ि आर्यानिके निकट श्राविकाके व्रत धारण कर मेरी माताके निकट आय रही। मेरी माताकी अर स्त्रीकी तानें अति सेवा करी, सो दोऊ ही वासूँ अति प्रसन्न भई अर जगतमें ताका यश बहुत भया, सो मैं भी अति प्रसन्न होय ताहि अँगीकार करता भया।"

दूना और रात चौगुना प्रेम बढ़ता गया और वे सब एक ही साथ रहने लगे। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत होनेपर दोनों विद्याधरोंने एक दिन चारुदत्तसे निवेदन किया कि हमें आपके यहां रहते हुये बहुत दिन होगये हैं। अब कृपया हमें अपने नगरको जानेकी आज्ञा दीजिये।

चारुदत्तने विद्याधरोंके जानेकी इच्छा जानकर सखेद कहा कि मित्रो ! आप जानेकी बात मत करिये। आपकी इस इच्छाको जानकर मुझे बहुत दुःख होता है। किन्तु जब देखा कि विद्याधरोंका विशेष आग्रह है तब उन्हें सन्मानपूर्वक विदा कर दिया।× विद्याधरोंने जाते समय चारुदत्तका प्रेमपूर्वक आभार माना और कहा कि आप गंधर्वसेनाके विवाहकी सुयोग्य व्यवस्था करियेगा।

इस प्रकार विद्याधरोंके चले जानेके बाद चारुदत्तने गंधर्वसेनाके स्वयंवरकी तैयारी की और देश देशान्तरोंमें अपने दूत भेजकर सब जगह घोषणा करवा दी कि जो पुरुष राजकन्या गंधर्वसेनाको वीणावादनमें जीतेगा उसके साथ उसका विवाह किया जायगा। यह सुनकर एकसे एक बढ़कर राजा महाराजा वहां आकर एकत्रित हुए। उन्हींमें यादववंशी कुमार वसुदेव भी आये थे। सब आकर स्वयंवरशालामें यथास्थान बैठ गये।

× हरिवंशपुराणमें विद्याधरों और देवोंको उसी समय वापिस गया हुआ लिखा है जब वे चारुदत्तको नगरमें पहुंचा चुके थे।

उधर गंधर्वसेनाको राजाओंके आनेका समाचार सुनाकर सखियां स्वयंवर-मण्डपमें चलनेकी प्रेरणा करने लगीं। तब गंधर्वसेनाने निराशापूर्ण वाणीमें कहा कि सखियो ! यह सारा आडम्बर व्यर्थ ही किया जारहा है। कारण कि इस पृथ्वीतलपर ऐसा कोई भी पुरुष प्रतीत नहीं होता जो मुझे वीणावादनमें जीत सके। फिर भी सखियोंका अति आग्रह देखकर गंधर्वसेना उठी और हाथमें वीणा लेकर स्वयंवर-मण्डपकी ओर चल दी।

जब वह गंधर्वसेना राजमार्गसे स्वयंवर मण्डपकी ओर जारही थी तब उसे देखनेके लिये भारी भीड़ लगी थी। नगरके स्त्री पुरुष उसके रूपलावण्यको देखकर दांतों तले उँगली दबाने लगे। कोई कहता था कि यह तो सुरकन्या है, कोई कहता था कि नहीं, यह तो नागकुमारीसी प्रतीत होती है। कोई कहता था कि यह विद्याधरी है और कोई कहता था कि यह स्वर्गलोकसे अप्सरा ही भूतलपर उतर आई है।

वास्तवमें गंधर्वसेना इतनी सुन्दर थी कि नगरजनोंको अनेक प्रकारके भ्रम उत्पन्न कर सकती थी। उसका मुख पूर्णमासीके चन्द्रमा समान था, शरीरकान्ति स्वर्णके समान थी, बड़ी २ मनोहर एवं कालिमापूर्ण आंखें मछली जैसी सुन्दर एवं मृगकी आंखोंको भी मात करनेवाली थीं, आंखोंकी भृकुटी तो मानों कामदेवका टेढा धनुष ही थीं, उसके मस्तकपर सुकोमल एवं श्याम केश बहुत ही शोभित

होते थे । ऊँची उठी हुई लम्बी नाक तो ऐसी सुन्दर लगती थी जैसे किसी चतुर कारीगरने सोनेकी ही बनाकर लगा दी हो । उसकी दन्तपंक्ति खिले हुये अनार दाने जैसी सुशोभित होती थी ।

कानोंमें कुण्डल ऐसे लगते थे जैसे विधाताने स्वयं अपने हाथोंसे ही बनाये हों । उसके गलेमें जगमगाती हुई मोतियोंकी माला और भी अधिक शोभित होरही थी । उसके स्तनद्वय स्वर्णकलशके समान, पतली कमर केहरिके समान, बाहु युगल कमलकी लता समान और जंघा कदलीस्तम्भके समान मालूम होती थी । उसकी मंद मंद चाल हंसकी गति जैसी मालूम होती थी । उसका शरीर इतना सुगंधित था कि पवनका झकोरा आते ही चारों ओर वातावरण सुगंधित हो जाता था । इतनेपर भी उसने अपने शरीरपर दिव्याभूषण और सुन्दर वस्त्र पहिने थे इसलिये उसकी शोभा और भी दूनी होगई थी

इस प्रकार सुसज्जित सुन्दरी गन्धर्वसेना अपने हाथमें वीणा लेकर स्वयंवर-मण्डपमें पहुँची । उसकी सुन्दरता देखकर उपस्थित राजागण आश्चर्यचकित हो मुग्ध हो गये । उसकी प्रभावक मूर्तिको देखकर कई प्रतिस्पर्धी तो वीणा हाथमें लेकर योंही रह गये और कितने ही हिम्मत हारकर नीचे मुख किये बैठे रहे । किसीने यदि वीणावादनका साहस किया भी तो वे अपनी कुछ भी चलती न देखकर भाग्यपर क्रुद्ध होने लगे । कुछ लोग तो मात्र गंधर्वसेनाकी प्रशंसा ही

करके रह गये और इस प्रकार बहुतसा समय व्यतीत होगया।

थोड़ी देरके बाद वसुदेवकुमारने गंधर्वसेनाको सम्बोधित करते हुये कहा कि सुन्दरि ! तुम जिस वीणावादनमें चतुराई बतला रही हो, तनिक उसके विषयमें कुछ विवेचन तो करो। बताओ तो सही कि वीणा कितनी पंक्तिकी होती है ? उसके बजानेका उत्तम समय कौनसा है ? इत्यादि।

यह सुनकर गंधर्वसेनाका मद उतर गया और वह बोली कि चतुर कुमार ! मुझे वीणाके गुणोंका ज्ञान नहीं है। कृपया आप ही बताइये कि आपने कितने प्रकारका वीणा राग गुरुके पास सीखा है। तब कुमारने कहा कि राजकुमारी! वीणाके ग्यारह गुण हैं। देखो मैं उन सब रागोंको तुम्हारे सामने सुनाता हूं। यों कहकर वसुदेवकुमारने बड़ी ही कुशलतापूर्वक वीणा बजाई और गंधर्वसेनाको मुग्ध कर लिया।*

इस चातुर्यप्रदर्शनके कारण गंधर्वसेना लज्जित होगई और नतमुख होकर खड़ी होगई। वसुदेवकुमारकी वीणासे मात्र गंधर्वसेना ही मुग्ध नहीं हुई थी किंतु पशुपक्षी तक मोहित

---

* हरिवंशपुराणमें लिखा है कि गन्धर्वसेना द्वारा दीगई अनेक वीणाओंको सदोष बताकर वसुदेवकुमारने उसे लज्जित कर दिया था। बादमें गंधर्वसेनाने वीणा-रागके विषयमें प्रश्न किया तब वसुदेवकुमारने बड़ी ही विद्वत्तासे उत्तर दिया। हरिवंशपुराणमें यह वर्णन ११९ श्लोकोंमें खूब विस्तारसे है। उसे देखनेसे कुमारका अद्वितीय वीणाचातुर्य मालूम होता है।

होगये थे। यहांतक कि काल समान भुजंग-सर्प भी मंत्र-मुग्धसे होगये। वहां बैठे हुये प्रतिस्पर्धी राजागण भी अन्तःकरणसे वसुदेवकी प्रशंसा करने लगे और एक एक करके सब विदा होगये।

उधर चारुदत्तने विजयोत्सव मनानेकी तैयारी कराई और नगरभरमें आनन्द फैल गया। कहीं विविध प्रकारके बाजे बजने लगे तो कहीं गायन संगीत और नृत्यादि होने लगे। चारुदत्तने अपने महलके आगे एक विशाल विवाहमंडप बनवाया। उसमें मोतियोंकी वंदनवारें लगवाईं और मोती माणिक आदिसे चौक पुरवाये। नगरकी युवतियां आकर वहांपर मधुर मधुर गीत गाती थी और गृहस्थाचार्य विवाहकी तैयारी कर रहे थे।

दूल्हा वसुदेवकुमारने भी अनेक प्रकारसे शृङ्गार करके विवाहकी तैयारी की। और रत्नजडित आभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर विवाह मंडपमें आये। एक ओर वसुदेवकुमार कामदेवके समान शोभित होरहे थे तो दूसरी ओर गंधर्वसेना सुरकन्या जैसी मालूम होती थी। बहुत कुछ आनन्दोत्सव और मंगल गीतोंके बाद दोनोंका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया गया। विवाहके समय चारुदत्तने वसुदेवकुमारको करकंकण, मुक्ताहार, छत्र, चमर, हाथी, घोड़ा और अनेक प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुयें भेटमें दीं और बड़े ही उत्साहके साथ उनकी विदा करदी।

चारुदत्तका वैराग्य ।

जिनेन्द्रचन्द्रोदितमस्तदूषणं कषायमुक्तं विदधोति यस्तपः ।
न दुर्लभं तस्य समस्तविष्टपे प्रजायते वस्तु मनोज्ञमीप्सितम् ॥
—अमितगतिः ।

इस प्रकार गन्धर्वसेनाके विवाहसे निवृत्त और निश्चिन्त होकर चारुदत्त आनन्दपूर्वक राज्य करते हुये न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे और अपनी चौतीस स्त्रियोंके साथ * आनन्दोपभोग करते हुये कालयापन करने लगे। साथ ही वह जिनेन्द्रपूजादि धर्म कार्य भी नियमित रूपसे करते थे। महाराजा चारुदत्तने अपनी न्याय-निपुणता एवं प्रजा-वात्सल्यके कारण सारे जगमें यश प्राप्त कर लिया। वास्तवमें यह सब पुण्यकी ही महिमा है कि जो पुरुष एक दिन कंगाल स्थितिमें इधर उधर मारा मारा फिरता था वही समय आनेपर राजपदपर विराजित हो आनन्द भोग करने लगा। चारुदत्तने अपनी न्याय-निपुणताके साथ बहुत समय तक राज्य संचालन किया।

एक समयकी बात है कि महाराजा चारुदत्त प्रसन्नचित्त होकर राज्यसिंहासनपर बैठे थे। दरबार भरा हुआ था। अमात्य भृत्यगण यथास्थान बैठे हुये थे। चारुदत्तके मस्तकपर मणिमय मुकुट शोभा दे रहा था। उसका तेज सूर्यके समान

* हरिवंशपुराण और आराधना कथाकोशमें ३४ स्त्रियोंका कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु सुमित्रा और वसंतसेनाका ही नाम आया है।

था तथा अनेक प्रकारके आभूषणोंके कारण वह इन्द्रके समान मालूम होते थे और उनके मस्तकपर मनोहर चमर दुर रहे थे। इतनेमें कोई निमित्त पाकर उन्हें अकस्मात् वैराग्य उत्पन्न होगया। और वे विचारने लगे कि इस संसाररूपी भयानक कूपमें पडे हुये मुझे बहुत समय व्यतीत होगया। भोगविलासमें यह मानवजीवन पूर्ण हुआ जाता है। मैं आज मनुष्योंके ऊपर कल्पित राज कर रहा हूं और इन लोगोंने मुझे राजा मान रखा है। किंतु वास्तवमें यह राज्य किस कामका ? सच्चा राज्य तो वह है कि जब मोक्षप्राप्ति करके सर्वोच्च पद प्राप्त किया जाय। जो कायर पुरुष अपने मनपर ही राज्य नहीं कर सकता वह दूसरोंपर क्या राज्य करेगा ?

इस प्रकार विचार कर चारुदत्तने निश्चय किया कि अब इस जंजालको छोड़कर किसी वीतराग मुनिके पास मुनि-दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण करना चाहिये। बस, फिर क्या था। चारुदत्तने उसी समय अपने कुटुम्बीजनोंको बुलाया और उन्हें राज्य भार सौंपकर * वनकी ओर चल

---

* आराधना कथाकोशमें लिखा है कि चारुदत्तने विरक्त होकर अपने 'सुन्दर' नामके पुत्रको श्रेष्ठिपद सौंपकर दीक्षा ली थी। यथा—

ततो वैराग्यमासाद्य सुन्दराख्यसुताय च।
दत्वा श्रेष्ठिपदं पूतं दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः ॥

इससे मालूम होता है कि चारुदत्तके कोई सुन्दर नामका पुत्र भी था और वे राजा नहीं किन्तु सेठ ही थे।

दिये और वहां जाकर किसी मुनिराजके समीप जिन दीक्षा धारण करली। दीक्षा धारण करते ही उनने सब कपट कषायका त्याग कर दिया जिससे उन्हें समता रसकी प्राप्ति हुई और सांसारिक सुखकी अपेक्षा कई गुना आनन्द देनेवाले अलौकिक सुखका अनुभव होने लगा।

चारुदत्त बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ एवं दृढ़ व्यवसायी थे। इसलिये उनने २८ मूलगुणोंका बड़ी ही तत्परतासे पालन किया। वे महीने महीनेके उपवास करने लगे और कठोर कायक्लेश सहने लगे। वे रत्नत्रयकी आराधना करते हुये योग निरोध करते थे और दश धर्मोंको धारण कर समाधिकी भावना भाते रहते थे। वे सर्वदा यही विचार करते थे कि इस जीवका कल्याण एक मात्र धर्मसे ही होसकता है। पंचपरमेष्ठीकी शरण सिवाय इसका कोई सच्चा सहाई नहीं है। निज आत्माका ध्यान करनेसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

सर्वार्थसिद्धि गमन।

सन्यासविधिना कालं कृत्वासौ शल्यवर्जितः।
स्वर्गलोकं समासाद्य देवो जातो महर्द्धिकः॥
—आराधना कथाकोश।

इस प्रकार विचार करते हुये चारुदत्तने बहुत तप किया और आयुके अन्त समय समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पद प्राप्त किया। वास्तवमें यह अहमिन्द्र पद महापुण्यके प्रतापसे प्राप्त होता है। वहांपर दिव्य तेजस्वी शरीर होता है और अन्तर्मुहूर्तमें ही पूर्ण यौवन प्राप्त हो जाता है। वहांपर अनेक प्रकारके रत्नजडित वस्त्राभूषण पहिननेको मिलते हैं। और सब अहमिन्द्र निरन्तर धर्म चर्चामें अपना समय व्यतीत किया करते हैं। चारुदत्तने इस प्रकारके अपूर्व स्थानको अपने पुण्योदयसे प्राप्त कर लिया।

चारुदत्तके साथ वसंततिलका तथा अन्य अनेक स्त्री-पुरुषोंने भी दीक्षा धारण की थी। वे सब अपने२ पुण्य और तपोबलके अनुसार शुभगतिको प्राप्त हुये हैं। चारुदत्तका जीव आज भी सर्वार्थसिद्धिमें सुखके साथ रहता है। अनेक प्रकारके उच्चमोत्तम भोगोंको भोगता है। सुमेरु और कैलाश पर्वत आदि स्थानोंके जिन मंदिरोंकी यात्रा करता है। विदेहक्षेत्रमें साक्षात् तीर्थंकर केवली भगवानकी स्तुति पूजा करता है और उनका सुख देनेवाला पवित्र उपदेश सुनता है।

तात्पर्य यह है कि इस जीवका सारा समय सर्वदा धर्म-साधनमें ही व्यतीत होता है। इसी जिन भगवानके उपदेश किये हुये निर्मल धर्मकी इन्द्र नागेन्द्र विद्याधर चक्रवर्ती आदि सभी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं। यही धर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है। इसलिये यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुखकी चाह है तो तुम भी इसी धर्मका आश्रय ग्रहण करो *

सब कथाओं और ग्रन्थोंका यही सार है कि धर्म सुख शांतिका देनेवाला है और पाप जगतके दुःखोंमें फँसानेवाला है। पाप और व्यसनोंमें फँसकर चारुदत्त जैसा ज्ञानी विवेकी श्रेष्ठ कुलवाला जीव मारा मारा फिरता है, दर दरका भिखारी बनता है, जनताकी दृष्टिमें गिर जाता है, और

---

* तत्र भोगान् सुभुञ्जानः स्वर्गलोकसमुद्भवान् ।
कुर्वन् यात्रां जिनेन्द्राणां महास्वर्णाचलादिषु ॥
साक्षात्तीर्थकरानुच्चैः केवलज्ञानलोचनान् ।
चारुदत्तचरो देवः समभ्यर्चत्सुभक्तितः ॥
शृण्वन् जैनेश्वरीं वाणीमाप्तेभ्यः शर्मदायिनीम् ।
इत्यादिधर्मसंसक्तः स देवः सुखतः स्थितः ॥
श्रीमत्सारसुरेन्द्रचन्द्रनिकरैर्नागेन्द्रसत्खेचरैः ।
षट्खण्डाधिपभूचरैश्च नितरां भक्त्या सदाभ्यर्चितम् ॥
धर्मं श्रीजिनभाषितं शुचितरं स्वर्गापवर्गप्रदं ।
नित्यं सारसुखाय शर्मनिलयं सन्तः श्रयन्त्वंजसा ॥

—आराधना कथाकोश ।

आत्मपतन करके अपने स्वर्गीय जीवनको नारकीय जीवन बना लेता है; वही जीव धर्म धारण करके पाप पुंजका नाश करता है, ज्ञानका प्रकाश करता है, लोकपूजित होजाता है, और स्वपर हित करता हुआ सर्वार्थसिद्धिका सुख प्राप्त कर लेता है।

धर्मकी महिमा अपरम्पार है। यदि कोई निर्धन हो, कुये या समुद्रमें गिर पडा हो, महान दुर्लंघ्य पर्वत वन या द्वीपमें जा फँसा हो, तो उसके पापके नाश होनेपर बातकी बातमें धर्मके प्रभावसे सब विघ्न दूर होजाते हैं। और उसे लक्ष्मी प्राप्त होजाती है। इसलिये जो मनुष्य लक्ष्मी और सुखके अभिलाषी हैं उन्हें जिनेन्द्र कथित चिन्तामणि रत्नके समान श्रेष्ठ धर्मकी आराधना करना चाहिये।

क्षीणार्थोऽपि पयोधिमप्यधिगतः कूपावतीर्णोऽप्यतो ।
दुर्लंघ्येऽपि च संचरन् गिरितटे द्वीपांतरे वा पुमान् ॥
लक्ष्मीं धर्मसखः प्रयाति निखिलां पापव्यपायाद्यत-
स्तद्धर्मं जिनबोधितं बुधजनाश्चिन्वंतु चिन्तामणिं ॥
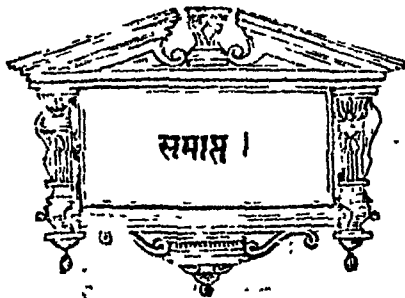
कविश्री बखतावरमलजी कृत—

चारुदत्त सेठकी कथा ।

—⋄⋄—

॥ मंगलाचरण ॥ सोरठा ॥

देवनकर पूजन्त, प्रभुके चरन सरोज ।
कविनमि कथा भनन्त, चारुदत्त वर सेठकी ॥ १ ॥

पद्धड़ी ।

चम्पापुर नगरी अति रसाल, तहँ सूरसेन नृप है विशाल ।
ताके इक सेठ जु भान नाम, ता गेह सुभद्रा नाम भाम ॥२॥
सो पुत्र हेत पूजे कुदेव, बहु भांति करे ताकी जु सेव ।
तौभी सुत नहि भयो सेठ भौन, कुत्सित सुरते लहि सिद्ध कौन॥३॥
इक दिन सुख थान जिनेश धाम, वंदनको पहुँची सेठ वाम ।
तहँ जुग चारन मुनि अति दयाल, वंदे सेठानी नाय भाल ॥४॥
फिर वच भाषे इन दुःख लीन, हो स्वामी तुम जगमें प्रवीन ।
मोको तप श्री होवे कि नाह, प्रभु भाषो जो संशय पलाय ॥५॥
इसके वच सुनके ज्ञान चक्ष, याके मनकी जानी प्रतक्ष ।
तब कह्यो सुता सुनले अवार, मिथ्या मतकी तू सेव टार ॥६॥
तेरे सुत होवेगो महान, विदुसन सुख दाता ज्ञानवान ।
इह निश्चयकर निज चित्त माहिं, यामें संशय रंचक जु नाहिं ॥७॥

दोहा ।

श्री मुनिवरके वचन सुन, नमन कियो सिर नाय ।
यह सेठानी हर्षयुत, तब ही निज गृह आय ॥ ८ ॥

ता पीछे भगवत कथित, धर्म गह्यो धर राग ।
केतेयक दिनके विषय, पुत्र भयो बड़भाग ।। ९ ।।
गुण उज्वल धीमान अति, चारुदत्त तिस नाम ।
उत्सव कीनो सेठजी, नगर विषय अभिराम ।। १० ।।

चौपाई ।

गुण युत वृद्ध भयो इह बाल, जग मांही है पुन्य रसाल ।
या करके क्या क्या नहिं होय, दिन दिन मंगल ताघर जोय ।। ११
सर्वारथ नामा इस भाम, मित्रवती पुत्री तिस धाम ।
याकू चारुदत्त बुधवान, व्याहत भयो तात हट जान ।।१२।।
तोपण भी यह आतम शुद्ध, तिय सेवनमें धारे बुद्ध ।
तब इस मात सुभद्रा नेह, पुत्र मोह वश कीनो येह ।।१३।।
जे जन वेश्यामें थे लीन, तिनके संग पुत्रको कीन ।
तब ये खोटे संग पसाय, भ्रष्ट भयो सब सुध विसराय ।।१४।।
जे धीमान करे नहिं भूल, खोटी संग पापको मूल ।
चारुदत्त गणकाके धाम, द्वादश वर्ष विताये ताम ।।१५।।
षोड़श सहस दीनार मंगाय, देव सन्त सेनाको खुवाय ।
इक दिन तियके भूषण लाय, गणकाके ढिग मन हरषाय ।।१६।।

दोहा ।

गणकाकी माता तबै, लख आभूषण येह ।
पुत्रीसे कहती भई, अब मम वच सुन लेह ।।१७।।
चारुदत्त धन रहित अब, इसते तज तू प्रीत ।
लक्ष्मी जुतते नेह कर, जो हम कुलकी रीत ।।१८।।

चौपाई ।

ऐसे सुन गणका तिह वार, यासों छोड़ दियो तब प्यार ।
लोक विषय यह है परतक्ष, गणिका निर्धनकों नहिं इक्ष ॥१९
नगर नायकाको तज धाम, आयो निज गृह जहां थी भाम ।
ताके आभूषण कछु लेह, मातुल पास गयो कर नेह ॥२०॥
ताजुत चलो बनजके हेत, देश उलुखल मांहि सचेत ।
जहां मूसरावर्त सुनाम, नगर बसत है अति अभिराम ॥२१॥
तहां कपास खरीदी जाय, चलत भये बोरे भरवाय ।
ताम्रलिप्त नगरीको जात, पथमें अगन लगी दुख दात ॥२२॥
ताकर भस्म भई जु कपास, जब यह चितमें भयो उदास ।
पुन्य विना उद्यम नहिं सिद्ध, क्योंकर पावे प्राणी रिद्ध ॥२३॥
चारुदत्त धर चित उद्वेग, मातुल पूछन गयो यह वेग ।
जहां समुद्रदत्त इक सेठ, बैठो प्रोहन ताके हेठ ॥२४॥
ता संग पवन द्वीपमें जाय, कष्टथकी बहु द्रव्य उपाय ।
आवे थो निज गेह मझार, पाप उदय तिस भयो अपार ॥२५
वारिधमें प्रोहन फट गई, भई सोई विध ना निर्मई ।
ऐसे सप्त वार फट पोत, पुन्य विना किम प्रापत होत ॥२६॥
आप बचो कछु पुन्य वसाय, हुती जु इसकी पूरन आय ।
क्षुरु वच सम इक लकड़ी खण्ड, पाकर वारिध तिरो अखण्ड ॥२७
राजग्रहीके पथको चलो, तहँ इक धूरत याको मिलो ।
विष्णुमित्र परिव्राजक दुष्ट, याको लखि बोलो वच मिष्ट ॥२८॥

मम वच सुन तू पुत्र अबार, अब ही चलियो मेरी लार ।
अटवीमें परवल है कूप, ताको जान रसायन रूप ॥२९॥
सो तोकू मैं देहूं अबै, जाकर पारिद नाशे सबै ।
ताके वच सुन याने कही, वेग तात दिखलाओ सही ॥३०॥
धन लोभी प्राणी जग माहिं, दुरजन पास ठगायो जाहिं ।
विष्णुमित्र दण्डी तिहवार, याको लेय गयो निज लार ॥३१॥
भूभ्रत यह वह कूप दिखाय, इक तूंबो इस करमें दाय ।
छींकेमें वैठाय उतार, रस्सी पकड़ गयो जहां वार ॥३२॥
तहां एक थो बहु दुख लीन, ताने याकूँ मने सु कीन ।
चारुदत्त पूछी तु कौन, क्यों यहां पड़ो कहां तुझ भौन ॥३३॥

दोहा ।

कूप विषयको मनुष्य तब, बोले वच तिह ठाम ।
उज्जैनी नगरी रहूं, धनदत्त वणिक नाम ॥३४॥
सो हम संगलद्वीपको, गये करन व्योहार ।
आवत मो प्रोहण फटो, मैं वच आयो पार ॥३५॥
इस परिव्राजक दुष्टने, एही लोभ दिखाय ।
तूंको देकर कूपमें, दियो मोय उतराय ॥३६॥
तब मैं तूंबो रस भरो, लीनों वाने खींच ।
दूजीवर मोहि काढ़ते, काट दियो अधबीच ॥३७॥
सो मैं अन्धे कूपमें, पड़ो महा दुख लीन ।
रस पीवत काया गली, होहि प्राण अब छीन ॥३८॥

काव्य ।

ऐसे सुनकर चारुदत्त इम गिरा सुनाई ।
क्या रस तूंबा इसे अबै देहों नहिं भाई ॥
तब वाने इमि कही अबै जो रस नहिं देगो ।
फेकूँगो पाखान पड़ो यहां दुःख सहेगो ॥ ३९ ॥
ऐसे सुनकर चारुदत्त कीनी चतुराई ।
तूँबो रसको भरो तासको दियो खिंडाई ॥
सो उन खेंचो वेग फेर रस्सी लटकाई ।
चारुदत्त पाखान तासमें दिये बंधाई ॥ ४० ॥

दोहा ।

आप कूपमें जतनते, तिष्ठो चिंतावान ।
परिव्राजक रस्सा तबे, काढ़ो जुन पाखान ॥४१॥
जात भयो निज धामको, ले रस बहु सुखदाय ।
कूप विषयके पुरख ते, चारुदत्त बतलाय ॥४२॥

पद्धड़ी ।

हो भ्रात अबे मोको बताय, कोई भी जीवनको है उपाय ।
जो मोहि बतावे तू अवार, तो मैं तोहि देहूं धर्म सार ॥४३॥
इमि कहकर शुभ नवकार मंत्र, सुर शिवदायक दीनो तुरन्त ।
सन्यास तनी विधको बताय, ताने गह लीनी चित लगाय ॥४४
तब चारुदत्तते इम कहंत, तुम पुरुष विलक्षण बुद्धिवन्त ।
या रस पीवन इक गोह आत, अबतो गई आवेगी प्रभात ॥४५॥
ताकी तुम पूंछ गहो महान, ताकर बाहर निकसो सुजान ।
ऐसी सुनकर तब चारुदत्त, गुण उज्वल चितधारी पवित्त ॥४६

सो गोह पूंछ गाढ़ी गहाय, बाहर निकसो छिलगई काय।
अटवीमें पहुँचो दुःख लीन, इच्छापूर्वक फिर गमनकीन ॥४७॥

चौपाई।

याके तात तनो जो भाय, रुद्रदत्त तहं मिलो सो आय।
कहत भयो सुन पुत्र अवार, तुम चालो अब हमरी लार ॥४८
रतनद्वीप सोहे विख्यात, तहां चलें हम तुम मिल सात।
इम कहि धन लोभी अधिकाय, बकरेकी तब पीठ चढ़ाय ॥४९॥
भूभृत मारग कीनो गौन, भाल लिखो सो मेटे कौन।
पहुँचे यह परवतके भाल, बोलो रुद्रदत्त विकराल ॥५०॥
अहो पुत्र तू अब सुन लेह, दोनो अजकी हनिये देह।
तिनकीं खाल विषय इहिवार, भीतर पैठे लेय कटार ॥५१॥
रतनद्वीपते पक्षी आय, पल भक्षी भेरण्ड इहां आय।
सो हमको लेजावे सही, रतन द्वीपको पटके मही ॥५२॥
ऐसे पापरूप बच कहे, तो पणि चारुदत्त नहिं गहे।
सन्त जननमें भीड़ जु पड़े, तोपण दुराचारतें डरे ॥५३॥
रुद्रदत्त इह दुष्ट अयान, जुग बकरेके नाशे प्रान।
जे अति दुष्ट निर्दयी चित्त, क्या क्या काज करे नहिं नित्त ॥५४
मरतो अज तिन देखो तबै, चारुदत्त इह कीनो जबै।
ताको मंत्र दियो नवकार, मरन समाधि करायो सार ॥५५॥
धरमी जनकी है यह रीत, पर उपकार करे यह नीत।
तब दोनों पैठें भांथड़ी, वे भेरुण्ड आय तिस घड़ी ॥५६॥
चोंच विषय धर चले तुरन्त, अंबुध ऊपर गमन करन्त।
और भेरुण्ड पहुँचे आय, इनसेतीं वे युद्ध कराय ॥५७॥

दोहा ।

रुद्रदत्तकी भांथड़ी. तजी भिरुण्ड तुरन्त ।
सो वारिधमें गिर मरो, खोटी योनि लहंत ॥५८॥
पापी शुभ गति नहिं लहे, इह भाषी भगवान ।
जातें शुभ कारज करो, जो चाहो कल्यान ॥५९॥

सोरठा ।

चारुदत्त युत खाल, ले भेरुण्ड पहुँचत भयो ।
रतनद्वीप तत्काल, रतनचूळ परवत जहां ॥६०॥
लगो विदारन सोय, चारुदत्त निकसो तबै ।
भागो खग इस जोय, चित्तमें डर बहु धारिके ॥६१॥

दोहा ।

पुन्यवान जन जगतमें, लहे सुख अधिकाय ।
दुख दाता दुरजन जु हैं, हितकारी हो जाय ॥६२॥

पायता ।

तिस भूभृत सीस खरे हैं, आताप जोग धरे हैं ।
ऐसे मुनि दीन दयालं, लख चारुदत्त तिह हालं ॥६३॥
तिनके चरनो ढिग आयो, बहु विधिते सीस नवायो ।
मुनि पूरन जो सु कीने, वच चये महा हित भीने ॥६४॥
हे चारुदत्त गुण मण्डित, तेरे हैं कुशल अखण्डित ।
तिन वच सुन हर्ष सुधारो, फिर चारुदत्त उचारो ॥६५॥
हे मुनि मैं दास तुम्हारो, मोकू किस ठौर निहारो ।
तब कहत भये मुनी ज्ञानी, तुम सुनो चतुर मम बानी ॥६६॥

मैं अमित खगेश्वर नामा, त्रिजियारध पै मम धामा।
इक दिन चित हर्ष उपायो, चंपानगरी ढिंग आयो ॥६७॥
शोभायुत कदली कानन, तिस लखकर फूलो आनन।
संग नार वसन्तसिरी थी, ताजुत वां केल करीथी ॥६८॥
तहां धूमसिंह खग आयो, मो तिय लखि चित्त लुभायो।
अपनी विद्या परकाशी, मोहि कील दियो दुखरासी ॥६९॥
मेरी भामा हरलई जवही, गयो अंवर माहीं तवही।
तवही मम पुन्य वसाये, तुम क्रीडाको तहँ आये ॥७०॥

दोहा।

मैंने तुझको देखकर, करी समस्या येह।
त्रियगुटिका मम पास हैं, ताको तू अव लेह ॥७१॥
पीस लगा मम तन विषय, तो छूटूं तत्काल।
सो तुम सवही विधि करी, हे सुंदर गुणमाल ॥७२॥

चौपाई।

तवही शल्य निकस मम गई, सव शरीरमें साता भई।
जैसे गुरुकी गिरा महान, सुनते असत तनी है हान ॥७३॥
फिर मैं अष्टापद गिर जाय, धूमसिंहते जुद्ध कराय।
अपनी तिय लायो छुड़वाय, फिर तुझपै आयो हरषाय ॥७४॥
मैं तुझ थुतकर कही जु मित्त, वर मांगो जो चाहो चित्त।
तुमने कहि कछु मांगूं नाहिं, सुखी भयो तुम दर्शन पाहि ॥७५॥
सतपुरुषनकी है यह वान, कर उपकार न मांगे दान।
तिस पीछे मैं गयो तुरन्त, अपने धाम विषै हरषंत ॥७६॥

दक्षण श्रेणीमें शुभ ठाम, शिव मंदिर नगरी अभिराम ।
तामें राज कियो मैं वीर, बहुत दिनन तक साहस धीर ॥७७॥
फिर मेरे उपजी यह चित्त, है सब ही संसार अनित्त ।
तब निज सुत लीने बुलवाय, नाम सिंह जसग्रीव वराय ॥७८॥
दोनोंको देकर सब राज, मैं आयो वनमें तप काज ।
जो संसार उतारो पार, ऐसी जिनवर दीक्षा धार ॥७९॥
तप बल पाई चारन ऋद्धि, गगन गामिनी जो परसिद्ध ।
अब तिष्टूं इस परवत बीच, ध्यान धार नाशों अघ कीच ॥८०॥

दोहा ।

इह वृतांत सुन सेठ सुत, है खुशाल धीमान ।
बहु श्रुति मुनिवरकी करी, तिष्टो ताही थान ॥८१॥
ताही छिन मुनिसुत जुगम, आये वन्दन हेत ।
चारुदत्तकी सब कथा, तिनते कह जगसेत ॥८२॥

काव्य ।

अरु ताही छिन माँहिं एक चरसुर तहं आयो ।
चारुदत्तके चरन कमलको शीश नवायो ॥
सेठ पुत्र तब कही सुनो चरसुर गुनधारी ।
नमन कियो मोहि आय कहो यह कौन विचारी ॥८३॥
विद्यमान गुरु पास होत हम कौनहि लायक ।
तब चतुरोत्तम देव कहे सुनिये मुझ वायक ॥
मोको बकरो जान हुतो परवत पै स्वामी ।
रुद्रदत्तने प्राण हने मैं दुख तहँ पामी ॥ ८४ ॥

तुम दीनों नवकार मंत्र सन्यास करायो ।
ता प्रभाव कर प्रथम स्वर्गमें सुरपद पायो ॥
इस कारनते आन चरन मैं बन्दे थारे ।
शुभ मारग दरशाय दियो तुम गुरू हमारे ॥ ८५ ॥
ऐसे कहकर त्रिदश धरम अनुराग धार चित ।
वस्त्राभूषन लाय चारुदत्तको पूजो नित ॥
फेर नमन कर स्वर्ग गयो वह तिसही बारी ।
सुर असुरन करि पूज होय जे पर उपकारी ॥ ८६ ॥

दोहा ।

तिस पीछे वे मुनि तनुज, गुरुको सीस नवाय ।
वनिक पुत्रको संग ले, चम्पा नगरी आय ॥८७॥
रत्नादिक बहु विधि दिये, चारुदत्तको सार ।
नमस्कार करके तबै, गये सु निज आगार ॥ ८८ ॥

चौपाई ।

जे प्रानी हैं पुन्य निधान । तिनको दुर्लभ कुछ नहीं जान ॥
सब ही है सुलभ सुखदाय । तातें धरम करो अधिकाय ॥८९॥
चार प्रकार दान नित करो । श्री जिनपूजनमें चित धरो ॥
वरत शील कल्याण निमित्त बुद्धिमान मन धारें नित्त ॥९०॥
भान सेठ शुभ जाको तात । भली सुभद्रा ताकी मात ॥
तिनके सुतको आवत जान । भये खुशी पुरजन अधिकान ॥९१॥
चारुदत्त निज पुन्य बसाय । भोगे भोग महा सुखदाय ॥
श्रीजिन भाषित धर्म अराधि । कियो विचार अब तजो उपाधि॥

सुन्दर नामा सुत बुध धार । ताको निज पद, दे तिहवार ॥
आप धरी दीक्षा तत्काल । करं सन्यास मरण गुणमाल ॥२३॥
शल्य रहित है मन वच काय । स्वर्गलोकमें बहु रिध पाय ॥
नाना विधिके तहँ शुभ भोग । भोगत भये पंचेन्द्री जोग ॥२४॥
मेरु सुदर्शन आदिक धाम । तहँ यात्रा यह करे ललाम ॥
अरु तीर्थंकर देव महान । समोशरनजुत ज्ञान निधान ॥२५॥
तिनकी वानी सुधा समान । ताको यह सुर करे सुपान ॥
इत्यादिक है धर्म सुरक्त । सुखतें तिष्ठे जिनवर भक्त ॥२६॥

सवैया इकतीसा ।

भागवत धरम सार संतजन हिये धार,
ताको धरो बार बार हितकारी जानके ।
देखे इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र खगधीश नर,
सेवें इसहीको सब भक्ति हिये ठानकें ॥
महा जो पवित्र येह स्वर्ग मोक्ष सुख देह,
याहीसों करो सनेह सर्म गेह मानकें ।
सोई धर्म नित प्रति मंगल करो सदीव,
ब्रह्म नेमीदत्त कही कथा श्रम मानके ॥२८॥

दोहा ।

चारुदत्त वर सेठकी; कही कथा इह सार ॥
भव्य जीव बांचो सुनो, करो सु पर उपकार ॥ २९ ॥